जगद्गुरुश्रीत्रिदण्डिग्रन्थमालाके ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, वें पुष्प

सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीतप्रकाशयुता

श्रीसीतोपनिषद्

ए वं

श्रीवशिष्ठसंहिता

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्यजी

जगद्गुरु रामप्रपन्नाचार्यजी
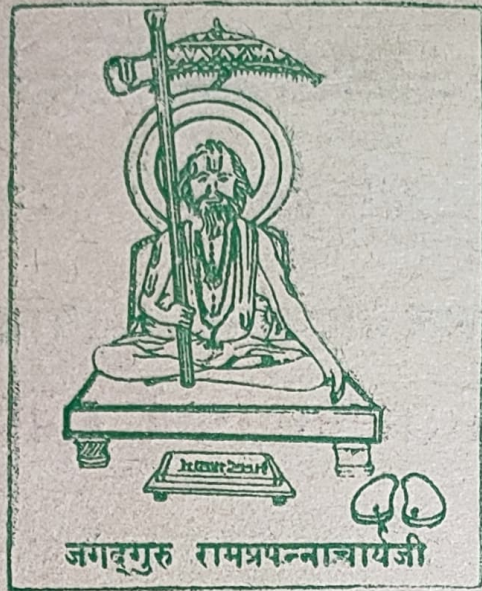
(१९४४-२०४६)

योगीन्द्र के १०४ वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में

प्रकाशक

स्वामी सीतारामाचार्य

व्यवस्थापक

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पीठ

अहमदावाद-३८०००७

श्रीरामनवमी-२०४८ विक्रम

श्रीरामानन्दाब्द ६९१

श्रीआनन्दभाष्यमुद्रणालयम्

आचार्यपीठ-अहमदावाद-७

श्रीमतेरामानन्दाचार्याय नमोनमः

॥ आमुख ॥

श्रीसम्प्रदाय (श्रीरामानन्द सम्प्रदाय) के सर्वस्वभूत श्रीवशिष्ठ संहिताओं को जो यत्र तत्र भिन्न भिन्न प्रकरण प्रकाशित हैं एकत्रित कर संक्षिप्त सरल हिन्दी विवरण के साथ प्रकाशित करने की साधकों की प्रेरणा पाकर इस ओर प्रवृत्त हुआ मुझे इस के आठ प्रकरण उपलब्ध हुये उन में से सात तो पृष्ठ २४ से १११ तक में मुद्रित हुये अनवधानतया श्रीचतुराननकृत श्रीमारुतिवन्दन वहाँ छपने से छूट गया अतः उसे यहाँ अनुसन्धान करें एवं श्रीसीतोपनिषद् मंगल मन्त्र "अर्वाची" का विवरण पृष्ठ १ में छपने से छूट गया अतः इसका भी पृष्ठ दो में भद्रं कर्णेभि से पूर्व अनुसन्धान करें ।

अर्वाची सुभगेः ? भव सीतेः ? वन्दामहेत्वा यथा नः सुभगा ऽससि यथानः सुफलाऽससि ॥

यह मन्त्र ऋग्वेद ४।५७।६ में पठित है एवं जगद्गुरु श्री पुरुषोत्तमाचार्य जी बोधायन संग्रहित वेदरहस्य में ३४ वें के रूप में इसका अन्वय यों है-सुभगे ! सीते ! त्वा वन्दामहे अर्वाची भव यथा नः सुभगा असससि यथा नः सुफला असससि इसमें जगद्गुरु

श्रीराघवानन्दाचार्य जी (१२०६–१३९६) का रहस्यमार्तण्ड भाष्य इस प्रकार है– सीताप्रकटितां श्री सीतां देवा प्रार्थयमाना आहुः सुभगे ! षडैश्वर्यशालिनि ! तथोवाच सर्वेश्वरी भगवती श्रीसीतैव श्रीहनुमत्पृष्टासती–

सर्वेश्वरी यथाचाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा ।
षड्गुणोभगवान् रामः षड्गुणाऽहं स्वभावतः ॥
सर्वस्याधरभूतौ च त्वावामेव हि मारुते ! ।
स्वे महिम्नि स्थितावावामन्याधरोन चावयोः ॥
सच्चिदानन्दरूपश्च मादृशो राघवोऽपि हि ।
मादृशोराघवश्चाऽपिसर्वस्याराध्यतां गतः ॥
सर्वफलप्रदौचावांनित्यौ च सर्वशेषिणौ ।
नित्यलीलाविभूत्योस्तच्चावांनाथौ श्रुतौ श्रुतौ ॥
दिव्यदेहगुणो रामोदिव्यदेहगुणा ह्यहम ।
भक्त्यामुक्तिप्रदोरामस्तथा चाहं मता बुधैः ॥
पूज्यौस्तुत्यौतथाऽमोघकीर्तनियौ समावथ ।
चिन्तनियौ प्रणामार्हावावां हस्यावभीष्टदौ ॥
आवां तौ हि यतः कश्चिन्नाधिको न च यत्समः ।
सर्वात्मानौ मतौ चावां सर्वेषां प्रेरकौ तथा ॥
सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ ।
भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ ॥

(वशिष्ठसंहिता १३-२०) उक्तञ्च श्रीहनुमताऽपि तत्रैव–

"सर्वकर्मसमाराध्या सर्वकर्मफलप्रदा ।
सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा श्रीसिता शरणं मम ॥
नित्यमुक्तस्तुतास्तुत्या सेविता विमलादिभिः ।
अमोघपूजनस्तोत्रा श्रीसीता शरणं मम ॥
कल्पवल्ली हि दीनानां सर्वदारिद्र्यनाशिनी ।
भूमिजा शान्तिदा शान्ति श्रीसीता शरणं मम ॥
आपदां हारिणी चाथ कारिणी सर्व सम्पदाम् ।
भवाब्धितारणी सेव्या श्रीसीता शरणं मम ॥

इति । सीतेः स्यत्यसुराणामन्तं करोतीती सा कर्तरिक्तः । सीताप्रकटनादसुरान्तकारिणि सीतोत्पन्ने त्वा स्त्रा वन्दामहे स्तुमः अर्वाची अनुकूला लोकानामस्माकं देवानां च भव एधि । यथा येनानुकूल्यप्रकारेण नो ऽस्माकं सुभगा उत्तमैश्वर्यप्रदा सति असिस दीप्यसे तथा यथानः सुफला असुरनाशनेन प्रयोजनवती च असिस । देवानामस्माकमैश्वर्य दानेन असुरनाशनेन च कृत्वा सुभगत्वेन सीतात्वेन सुफलत्वेन च दीप्येथा इति भावः ।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामप्रपन्नाचार्य जी योगीन्द्र इस मन्त्र की दीपिका में लिखते हैं-" हल के द्वारा कर्षणसे उत्पन्न होने पर देवगण, श्रीसीताजी की स्तुति करते हुये कहते हैं- उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली तथा असुरों का अन्त करने वाली एवं हल के द्वारा कर्षणसे पृथीवि से प्रकटित हे सीते ? हम देवगण आपको प्रणाम करते हैं । जिससे हम लोगों को उत्तम ऐश्वर्य देकर तथा असुरों का नाशरूप प्रयोजन सिद्धकर आप शोभित हों।'

यं ब्रह्मेति गदन्ति वेदनिपुणा वेदान्तिनः सर्वदा
सांख्यज्ञैः पुरुषस्तथाक्षचरणैः कर्तेति यो गीय ते।
भाट्टैः कर्म च काव्यकोविदचयैर्मुख्योरसः कीर्तितो
विश्वेस्मिन्सुजनान्स एव भगवान् पायाद्रघूणां पतिः ।।
श्रीरामेण तदात्म्यतामुपगतां कल्याणधामां शुभां
सर्वैश्वर्ययुतां गुणैकनिलयालीलाजगद् द्धारिणीम् ।
आम्नायान्तविभावनीयचरितां ब्रह्मादिभिर्वन्दितां
श्रीदेवीं मिथिलाधिराजतनयामम्बां किशोरीं भजे ।'
प्राप्योपायपरां पूर्णां प्रपन्नामरवल्लीरीम् ।
श्रीरामाऽभिन्नरूपां तां श्रियं शश्वत्समाश्रपे
(जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रघुवराचार्याः)

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीहनुमते नमः

श्रीमारुतिवन्दनम्

सर्वेशः सर्वशक्तिश्च श्रीरामः सर्वकारणम् ।

तस्य मन्त्रप्रदं बन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥१॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

सीताराम समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम् ।

रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

यह लोक वेद प्रसिद्ध है कि विश्व सर्जक श्रीब्रह्माजीने श्रीसम्प्रदाय के तृतीय आचार्य श्रीहनुमान् जी से ब्रह्म तारक मन्त्र राज षडक्षर श्रीराम महामन्त्र की दीक्षा शिक्षा पाई है । "यस्य देवे पराभक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः" इस श्रुतिवचनानुसार अपने गुरुदेव श्रीमारुतिजी की वन्दना की है जो श्रीवशिष्ठ संहिता में संग्रहित आठश्लोकों में है उसका सामान्यजनों के बोधार्थ अति संक्षिप्त निवृत किया जा रहा है-

स्थावर जगम चराचर जड चेतन सभी के कारण सब के ईश समाराधनीय एवं सभी के नियन्त्रक तथा सर्व शक्ति सम्पन्न यानी सृष्टि पालन तथा संहार कर्म सम्पादन क्षम शक्ति शाली श्रीरामजी हैं उनका तारक मन्त्र राज षडक्षर श्रीराममहामन्त्र को मुझे देने वाले बुद्धि के सागर मरुतनन्दन श्रीहनुमान् जी को मैं चतुरानन ब्रह्मा सादरवन्दना करता हूं ॥१॥

श्रीराम ब्रह्मनिष्ठं च ब्रह्मचर्यपरायणम् ।

सीताहर्षप्रदं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥२॥

पर ब्रह्म श्रीरामजी में अनन्यनिष्ठा वाले एवं ब्रह्म चर्य व्रत में परायण अखण्ड ब्रह्मचारी और माता श्रीसीताजी को सर्वेश श्रीरामजी का सन्देश सुनाकर हर्ष प्रदान करने वाले बुद्धि के खजाने श्रीमारुति जी को वन्दन करता हूं ॥२॥

श्रीमद्रामप्रियायाः श्रीसीतायाः शिष्यतां गतम् ।
सीतारामप्रियं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥३॥

षडैश्वर्य शाली श्रीरामचन्द्रजी के प्रिया सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के शिष्य एवं सर्वेश्वर श्रीसीता रामजी के अति प्रिय बुद्धि के समुद्र श्रीहनुमान् जी को सादर दण्डवत् प्रणाम करता हूं ॥३॥

भवाब्धितारकं सीतारामभक्त्याश्रितं जनम् ।
नित्यमुक्तमहं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥४॥

आश्रित या शरण में आये हुये साधक जनों को श्रीसीतारामजी के भक्ति के उपदेश द्वारा संसार रूप सागर से पार उतार देने वाले नित्यमुक्त जीव मति के खजाने श्रीहनुमानजी को मैं सादर प्रणाम करता हूं ॥४॥

दोषहीनं गुणाम्भोधिंदिव्यदेहं मनोजवम् ।
वेदतत्वविदं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥५॥

सभी प्रकार के हेय दोष से रहित एवं सभी सद्गुणों के समुद्र और दिव्यदेह वाले तथा मन के गति के समान गति वाले एवं वेद के तत्त्वों को यथार्थ रूप से जानने वाले बुद्धि के समुद्र श्रीहनुमानजी को सादर वन्दन करता हूं ॥५॥

प्रणम्यं पूजनीयं च स्तवनीयं बलाम्बुधिम् ।
शरण्यं सद्गुरु वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥६।

सर्वदा प्रणाम करने योग्य पूजा करने योग्य एवं स्तुति करने योग्य बलके अम्बुधि सागर एवं शरण में आये जनों की रक्षा करने में पूर्ण समर्थ मेरे सद्गुरु देव मति के खजाने श्रीमारुति जी को सादर वन्दना करता हूं ॥६॥

ऋद्धिसिद्धिप्रदं चाथ भक्तानां शत्रुनाशकम् ।
आधिव्याधिहरं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ।।७।।

आराधना करने वाले साधकों को ऋद्धि एवं सिद्धि को देने वाले तथा भक्तों के शत्रुओं का नाश करने वाले और आधि व्याधि प्रभृति सभी उपद्रवों को हरण करने वाले बुद्धि के समुद्र श्रीमारुतिजी को वन्दन करता हूं ।।७।।

सर्वज्ञं रामभक्तं च दयाब्धिं ज्ञानभक्तिदम् ।
देवदेवं गुरुं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ।।८।।

सर्वज्ञ–भूत भविष्य एवं बर्तमान के स्वरूप को यथार्थ रूप से जानने वाले सर्वेश्वर श्रीरामजी के अनन्य भक्त दया के समुद्र एवं साधकों को ज्ञान तथा भक्ति प्रदान करने वाले देवताओं के भी देवता सर्व कामना प्रद श्रीगुरु देव मति के खजाने मरुतनन्दन जी को सादर दण्डवत प्रणाम करता हूं ।।८।।

आनन्दभाष्य सिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

श्रीरामः शरणं मम

सर्वेश्वर श्रीसीतारामाय नमः
श्रीहनुमते नमः

श्रीसीतोपनिषद्

ॐ अर्वाची सुभगे ! भव सीते ! वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफलाऽससि ॥

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः
जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामेश्वरानन्दाचार्य
प्रणीत प्रकाश

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

यह श्रीसीतोपनिषद् अथर्ववेदीय है । श्रीमैथिलीमहोपनिषद् श्रीरामतापनीयोपनिषद् प्रभृति अन्य उपनिषद् भी अथर्ववेदीय ही हैं । उपनिषद् शब्द का संक्षिप्त अर्थ निम्न प्रकार से होता है 'धर्मे रहस्युपनिषद्' अ. को. ३-३-९३' रहस्यमय धर्मबोधनार्थ में उपनिषद् शब्द का प्रयोग होता है । 'भवेदुपनिषद् धर्मे वेदान्ते' मे० ५६' तो उपनिषद् का वेद वेदान्त गर्भित धर्मबोधक अर्थ होता है । षद्लृ विशरण गत्यवसादनेषु धातु से, उप तथा नि उपसर्ग पूर्वक क्विप् प्रत्यय करने से उपन्यषीदत् इति इस विग्रह में उपनिषद् शब्द बनता है । उप का अर्थ समीप या आधिक्य होता है तो उपनिषद् का अर्थ वेदान्त-एकान्त में मनन करने वाली परा विद्या, वेदों का अन्तिम तत्त्व गूढ रहस्यों के अनुसन्धान द्वारा पर ब्रह्म श्रीरामजी के समीप पहूंचाने वाली उत्कृष्ट विद्या प्रभृति अनेक अर्थ होते हैं ।

अपौरुषेय या ईश्वरीय वाक्य को वेद मन्त्र कहा जाता है, मन्त्रिगुप्त परिभाषणे इस पाणिनीय नियमानुसार गुप्त या रहस्य वार्ता को मन्त्र कहते हैं, इसका प्रयोग गुह्यातिगुह्य वेद उपनिषद् जो वेद का अन्त भाग है उस में होता है । इन मन्त्रों या उपनिषदों

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुस्टुवांँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं यद्भावसाधनम् ।
तद् ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ॥

के अध्ययनारम्भ में वेद मन्त्रोंसे ही मंगलाचरण करने की परिपाटी है अतः इस उपनिषद् के भी प्रारम्भ में 'ॐभद्रम्' इस मन्त्र से मंगलाचरण किया जाता है ।

हे सर्वाराध्य परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी ! आपके आराधक हम सब कानों से कल्याणमय बचन ही सुने अन्य नहीं, हम सब यज्ञ कर्मों में समर्थ होकर नेत्रों से सदाशुभ दर्शन ही करें तथा अपने स्थिर अंगों तथा शरीरों से आपकी स्तुति करने वाले हम सब देवताओं के लिये भी हित कारक आयुका भोग करने वाले बनें । दैहिक दैविक तथा भौतिक तीनों तापकी शान्ति हो ।

इच्छा आदि मन्त्र को श्रीसीतोपनिषद् के रूप में ही माना जाता है, कितने ही उपनिषद् संग्रहकारों ने मंगलाचरण के रूप में लिखा है । श्रीसीतोपनिषद् में जिन तत्त्वों का निरूपण हुआ है उस दृष्टि से देखने पर अयुक्त भी नहीं है । उपनिषद् मानें या मंगलाचरण तत्त्व एक ही हुआ मंगलाचरण उपनिषद् का ही तो है ? अस्तु ।

जिन श्रीरामाभिन्न स्वरूपा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की सत्ता स्वभावादि को प्रसिद्ध करने के लिये इच्छा शक्ति ज्ञान शक्ति क्रिया शक्ति रूपा तीन शक्तियां हैं या सर्वेश्वर श्रीरामजी की आज्ञा से सृष्टि स्थिति तथा संहार रूप तीनों कार्यों को सम्पादन करने के लिये इच्छा ज्ञान तथा क्रिया शक्ति स्वरूपा हैं उन ब्रह्म सत्ता रूप से यानी सामान्यतः ब्रह्म श्रीरामजी के ही सत्ता से सत्ता-स्वरूपवाली उस श्रीसीता तत्त्व की हम सब उपासना करते हैं ।

देवा ह वै प्रजापतिमब्रूवन् का सीता ? किं रूप-मिति ॥१॥

स होवाच प्रजापतिः सा सीतेति ॥२॥

मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः मता ।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सीता प्रकृतिरुच्यते ॥३॥

अन्य समस्त तत्त्वों को अवगम करलेने के वाद इन्द्रादि देव लोग संसार के मूलतत्त्व जानने की इच्छा से प्रजापति-ब्रह्मा जी के पास जाकर सादर अभिवादन करके कहनेलगे-निम्न प्रश्न किये हे प्रजापतिजी ! श्रीसीताजी कौन हैं ? और उनका तात्विक स्वरूप क्या है यह हमें कृपाकरके वतादें ताकि श्री सीता विषयक सन्देह से निवृत्त होकर उनकी आराधना करके मुक्ति के भागी बनें ॥१॥

देवताओं की सविनय प्रार्थना सुनकर प्रजापतिजी ने कहा तत्त्व के जिज्ञासु देवो ! आप सवों ने श्रीसीता तत्त्व के विषय में जिज्ञासा की है अतः आप सब धन्य हैं उस पर तत्त्व को सावधान होकर सुनें वे श्रीसीताजी हैं जो कि-॥२॥

सर्वेश्वर श्रीरामजी के निर्देशानुसार सम्पूर्ण चराचर जगत् को उत्पन्न कर पालन करने के वाद अन्त में उपसंहार करती हैं अतः वे प्रकृति मानी जाती हैं क्योंकि वे सत्वगुण रजोगुण तथा तमोगुण जिनसे की सृष्टि स्थिति तथा संहार रूप कार्य हुआ करते हैं उनकी साम्यावस्था रूप मूलप्रकृति हैं अतः वे ही मूल प्रकृति कहलाती हैं । तथा प्रणव ॐ कार की प्रकृति-मूल कारण स्वरूप होने से सर्वेश्वरी श्रीसीताजी प्रकृति कही जाती हैं ॥३॥

'सीता' इति त्रिवर्णात्मा साक्षात्मायामया भवेत् ।
विष्णुः प्रपञ्चबीजं च माया ईकार उच्यते ॥४॥
सकारः सत्यममृतं प्राप्तिः सोमश्च कीर्त्यते ।
तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराजः प्रस्तरः स्मृतः ॥५॥

ईकाररूपिणीसोमामृतावयवदिव्यालङ्कारस्रङ्मौक्तिकाद्याभरणालङ्कृता महामायाऽव्यक्तरूपिणी व्यक्ता भवति ॥६॥

देवगणो ! 'सीता' इसमें सामान्यतः तीन वर्ण हैं 'स' 'ई' तथा 'ता' यह साक्षात् मायामय यानी सर्वेश्वर श्रीरामजी की आद्याशक्ति हैं जिसको लेकर समय समय पर वे अवतार लेते हैं । उन तीन वर्णों में से जो ईकार है वह विष्णुस्वरूप है वही प्रपंच यानी संसार के विस्तार का कारण है तथा 'माया' इस नाम से प्रसिद्ध है ॥४॥

उन तीन वर्णों में जो सकार है वह सत्य अमृत प्राप्ति तथा सोम स्वरूप है यानी इन चार का वाचक है यह सर्वप्रसिद्ध है । और उनमें से जो तकार ता यह वर्ण है वह लक्ष्मी का बीज यानी लक्ष्मी का प्रकाशक तथा विराट् स्वरूप का विस्तारक-फैलाव करने वाला है इस रूप में सर्वशास्त्रों में स्मरण किया जाता है ॥॥५॥

देवताओं ने 'का सीता ? किं रूपम्' ऐसा तत्त्व तथा स्वरूप विषयक दो प्रश्न किये थे उनमें से श्रीसीता तत्त्व विषयक प्रश्न का संक्षिप्त जवाब देकर स्वरूप विषयक प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—वे श्रीसीताजी ईकार रूपिणी सोम तथा अमृतरूप अवयव अङ्गोंवाली यानी सत्य अमृत प्राप्ति तथा सोम इन चार प्रकार के अङ्गों से युक्त और दिव्य अलंकार मौक्तिकादि आभूषणों से युक्त महामाया अव्यक्त रूपिणी हैं तो भी उक्त सभीगुणों से

प्रथमा शब्दब्रह्ममयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना उद्-भावनकरी नरा का रा(रसा)त्मिका ॥७॥

द्वितीया भूतले हलाग्रेसमुत्पन्ना ॥८॥

तृतीया ईकाररूपिणी अव्यक्तस्वरूपा भवतीति सीता इत्युदाहरन्ति ॥९॥

शौनकीये

श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥१०॥

समलंकृत होकर व्यक्त–प्रकट हो जाती हैं यानी उन सभी दिव्य अप्राकृत तथा नित्य गुणों के साथ ही श्रीसीताजी प्रकट होती हैं अन्यों के समान जन्म नहीं लेती ॥६॥

सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के तीन प्रकार के स्वरूपोंको स्पष्ट करके कहते हैं श्रीसीता का प्रथम रूप शब्द स्वरूप है वे ही शब्द ब्रह्ममयी हैं जो स्वाध्याय-विधिपूर्वक अध्ययन काल में अति प्रसन्नता को उद्भावन प्रकट करनेवाली हैं तथा स्वस्वरूपात्मिका या अवतार काल में नराकार स्वरूपिणी हैं और आराधक जनोंको स्वविषयक ज्ञान प्रदान करने वाली हैं ७॥

श्रीसीताजी का दूसरा स्वरूप वह हैं जो विदेहराज जनकके यज्ञ की भूमि शोधनार्थ हलचलाने से भूतल से हलके अग्रभाग से समुत्पन्न हुईं थी ॥८॥

श्रीसीताजी का तृतीय स्वरूप ईकार स्वरूप है जो अव्यक्त स्वरूपवाली कही गई है अतः सर्वशास्त्रों में शास्त्रकार 'सीता' इस प्रकार से सर्वेश्वरीजी का पहला स्वरूप नाम दूसरा स्वरूप अवतार तथा तीसरा स्वरूप सर्वावतारी हैं ऐसा उदाहृत–प्रदर्शित करते हैं ॥९॥

शौनकीय शाखा में इन्हीं पूर्वोक्त तत्त्वों को प्रदर्शित किया

सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ।
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः ॥११॥ इति ॥
अथातो ब्रह्म जिज्ञासेति च ॥१२॥

सा सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सर्वाधारकार्यकारणमयी, महालक्ष्मी-

गया है निम्न प्रकार से श्रीसीताजी सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के सर्वदा सान्निध्य के कारण जगत् के आनन्दकारिणी शरणापन्न सभी जीवों को आनन्द प्रदान करने वाली हैं तथा सम्पूर्ण देहधारियों की उत्पत्ति स्थिति तथा संहार करने वाली हैं ॥१०॥

सर्वेश्वरी श्रीसीताजी को मूल प्रकृति नाम वाली ज्ञानशक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तथा तेज रूप छ ऐश्वर्य से युक्त जानना चाहिये । वे ही सर्ववेदशास्त्रों के कारणभूत प्रणव हैं इस लिये ब्रह्मवादी जन यानी वेदतत्त्व को यथातथ्य रूप से जानने वाले और उस तत्त्व को उसी प्रकार से उपदेश देने वाले मन्त्र द्रष्टा ऋषि वर्ग उन्हें प्रकृति यानी सर्वमूल कारण स्वरूपा हैं, ऐसा कहते हैं ॥११॥

तथा अथ-इस पूर्वोक्त ज्ञान प्राप्ति के बाद अतः पूर्वोक्त सभी कारणों से ब्रह्म जिज्ञासा ब्रह्म को जानने की इच्छा करे इति इस प्रकार निश्चय रूप से आदेश है अर्थात् पूर्व वर्णित प्रकार से सर्वेश्वरी श्रीसीताजी विषयक पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के वाद ही जिज्ञासु जीव वर्ग ब्रह्म जिज्ञासा का अधिकारी हो सकता है अन्यथा नहीं । तथा परब्रह्म श्रीरामजी के तत्त्व विषयक जिज्ञासु वर्ग को भी पूर्वोक्त श्रीसीता तत्त्व के जानने के वाद ही 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' इस वेदान्त दर्शन से प्रतिपादित ब्रह्म तत्त्व को जानने के लिये सद्गुरु से यथानियम अध्ययनारम्भ करना चाहिये ॥१२॥

देवस्य भिन्नाऽभिन्नरूपा, चेतनाऽचेतनात्मिका, ब्रह्म स्थावरात्मा, तद्गुणकर्मविभागभेदाच्छरीररूपा, देवर्षि-मनुष्यगन्धर्वरूपा, असुरराक्षसभूतप्रेतपिशाचभूतादिभूत-शरीररूपा, भूतेन्द्रियमनः प्राणरूपेतिचविज्ञायते ॥१३॥

ब्रह्माजी देवताओं को श्रीसीताजी के वास्तविक ऐश्वर्य का निरूपण करते हुए कहते हैं देवो ! वे श्रीसीताजी सर्ववेदमयी यानी सर्वज्ञान स्वरूपा हैं या ऋग् यजु साम तथा अथर्व वेद रूपा हैं, सर्वदेवमयी सभी शास्त्रों में वर्णित जितने देव या देवी हैं तत् तत् स्वरूपा हैं, सर्वलोक यानी भूः भुव प्रभृति चौदह लोक रूपा हैं, सर्वकीर्ति-सभी प्रकार के यश स्वरूपा हैं, सर्वधर्म-सभी प्रकार के सुकृत या सत्रों से पालनीय नित्य नैमित्तिक तथा काम्यानुष्ठान रूप धर्म स्वरूपा हैं, सर्वाधार यानी चित् तथा अचित् सम्पूर्ण प्राणिवर्गों के एकमात्र आधार तथा सभी जड चेतन वर्गों के कारण और कार्य स्वरूपा हैं, देव-सर्वेश्वर श्रीराम-चन्द्रजी से भिन्न तथा अभिन्न स्वरूपा महालक्ष्मी हैं अर्थात् श्रीरामजीसे कभी भी अलग न होने वाली उनकी आधारभूता शक्ति हैं । जिनके विषय में महर्षि श्रीवाल्मीकिजी कहते हैं 'अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभायथा' 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा' यानी दोनों शक्ति शक्तिमान् परस्पर में एक रूप हैं अव-तार दशा में कार्यकलापानुसार अलग जैसे लगते हैं पर हैं दोनों एक रूप ही चेतन तथा अचेतन यानी चित्स्वरूप जीववर्ग और अचित्स्वरूप जडवर्ग यों चित् अचित् तथा ईश्वररूप तत्त्वत्रया-त्मक ब्रह्म से लेकर स्थावरान्त सभी भूतप्राणी रूप वाली हैं, तद् उस तत्त्वत्रयात्मिका यानी चित् अचित् तथा ईश्वर स्वरूपा श्रीसीताजी के गुण-वात्सल्यादि अनन्त गुण या रूपादि चौबीस गुण और कर्म सृष्टि स्थिति और संहार रूप

सा देवी त्रिधा भवती शक्त्यासना इच्छा शक्ति क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति ॥१४॥

इच्छाशक्तिस्त्रिधा भवति । श्रीभूमिनीलात्मिका भद्र रूपिणी, प्रभावरूपिणी सोमसूर्याग्निरूपा भवति ॥१५॥

कर्मों के विभागों के हिसाब से भेद होने से तत् तत् शरीर रूपा हैं, अर्थात् जगत् कारणभूता श्रीसीताजी गुणत्रयों के द्वारा स द्वारक परिणामी रूपा हैं स्वतः तत्त्वत्रयों के शरीर स्वरूपा नहीं एतावता अविकृत परिणाम है विकार विशिष्ट नहीं यानी श्रीसीताजी के सर्वेश्वर श्रीरामजी से अभिन्न होने से उनके विशेषणांश में ही परिणाम होता है विशेष्यांश में नहीं, इसी तत्त्व को स्पष्ट करती है आगे की श्रुति वे देवता-मन्त्रों के द्वारा स्तुत्य दिव्य लोक निवासी वर्ग ऋषि-तत्त्ववेत्ता मन्त्र द्रष्टा वर्ग मनुष्यवर्ग तथा गन्धर्व एक योनि विशेष वर्ग विशेष स्वरूपा हैं, तथा श्रीसीताजी ही असुर राक्षस भूत प्रेत पिशाच भूतादि-पृथिवी अप तेज वायु तथा आकाश आदि भूत-सृष्टि के प्रारम्भिक संपूर्ण भूतवर्ग शरीर स्वरूपा हैं, और भूत-प्राणिवर्गों के इन्द्रिय यानी श्रोत्र त्वक् चक्षु घ्राण तथा रसना पांच ज्ञानेन्द्रि वाणी हाथ पैर पायु तथा उपस्थ पांच कर्मेन्द्रिय और उभयात्मक मन तथा प्राण-स्वरूपा भी वे ही हैं इस प्रकार साधकों द्वारा जानी जाती हैं ॥१३॥

ब्रह्माजी देववर्गों को श्रीसीतातत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं देवताओ ! पूर्व वर्णित सर्वगुण सम्पन्न दिव्यगुणमयी देवी श्री सीताजी जो कि शक्त्यासना-सम्पूर्ण शक्ति की आसन-आधारभूता यानी सभी की अधिष्ठातृ हैं । स्वेच्छा से ही कार्य कलापानुरूप इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति तथा साक्षात् शक्ति इस प्रकार से तीन प्रकार की होती है ॥१४॥

सोमात्मिका ओषधीनां प्रभवति कल्पवृक्ष पुष्पक लतागुल्मात्मिका, औषधभेषजात्मिका, अमृतरूपा, देवानां महस्तोमफलप्रदा, अमृतेन तृप्तिं जनयन्तीं देवानामन्नेन पशूनां तृणेन तत्तज्जीवानाम् ॥१६॥

पूर्ववर्णित तीन प्रकारों की शक्तियों का स्पष्ट निरूपण के लिए ये सर्व प्रथम इच्छा शक्ति के भेदों को बतलाते हैं-भद्र यानी कल्याण रूपिणी तथा प्रभाव यानी तेज रूपिणी के भेद से प्रथम इच्छा शक्ति के दो भेद होते हैं। श्रीसीताजी का यह भद्र रूप माधुर्य रूपेण तथा प्रभाव रूप ऐश्वर्य रूपेण अवगम करना चाहिये। इन दो भद्र तथा प्रभाव रूप से विभक्त इच्छा शक्ति तीन तीन प्रकार की होती हैं। उनमें से प्रथम भद्र यानी कल्याण या माधुर्य स्वरूपिणी के श्रीदेवी भूमिदेवी और नीलादेवी के रूप से तीन भेद होते हैं। द्वितीय प्रभाव यानी तेज या ऐश्वर्य स्वरूपिणी के सोमरूप सूर्यरूप तथा अग्निरूप के भेद से तीन प्रकार होते हैं ॥१५॥

श्रीसीताजी के प्रभाव रूपिणी के तीन भेद में से प्रथम सोमरूपिणी का वर्णन करते हैं-सोम यानी चन्द्र रूप में श्रीसीता जी ओषधियों का संपोषण करती हैं, कल्पवृक्ष अर्थात् वह वृक्ष मागनेपर सभी इच्छित पदार्थ मिल जाता है तथा पुष्प फल-लता गुल्म-झाडी स्वरूपा, औषध अन्न भेषज-सर्वरोगनिवारक रूपा और अमृत-जिसका सेवन करने से सेवक अमर होजाता है तत् स्वरूपा तथा देवताओं को महस्तोम यानी अन्यों को दुर्लभ विशिष्ट फल प्रदान करने वाली, और देवताओं को अमृत से अन्न से प्राणिवर्गों को तथा भिन्न भिन्न जीव वर्गों को उन उनके अनुकूल तृण-खाद्य पदार्थों से तृप्ति करने वाली सोमात्मिका श्रीसीताजी ही हैं ॥१६॥

सूर्यादिसकलभुवनप्रकाशिनी, दिवा च रात्रीः, कालकलानिमेषमारभ्यघटिकाष्टयामदिवसवाररात्रिभेदेन पक्षमासर्त्वयनवत्सरभेदेन मनुष्याणां शतायुः कल्पतयाप्रकाशमाना, चिरक्षिप्रव्यपदेशेन निमेषमारभ्य परार्धपर्यन्तं कालचक्रं जगच्चक्रमित्यादिप्रकारेण चक्रवत्परिवर्त्तमाना, सर्वस्यैतस्यैव कालस्य विभागविशेषाः प्रकाशरूपा कालरूपा भवन्ति ॥१७॥

अग्निरूपा अन्नप्राणादिप्राणिनां क्षुत्तृष्णात्मिका, देवानां मुखरूपा, वनौषधीनां शीतोष्णरूपा, काष्ठेष्वन्तर्वहिश्च नित्यनित्यरूपा भवति ॥१८॥

द्वितीय सूर्य रूपिणी के सम्बन्ध में कहते हैं—श्रीसीताजी सूर्यप्रभृति सम्पूर्ण भुवनों की प्रकाशिनी हैं, दिन तथा रात्रिकाल के कला और निमेष से लेकर घटि अष्टयाम दिवस वार रात्रि के भेद से पक्ष मास ऋतु अयन तथा संवत्सर के भेद से मनुष्यों सभी जीवों की 'शतायुर्वैपुरुषः' के अनुसार सौ वर्ष जीवनकाल की विभिन्न कल्पना के रूप में प्रकाशित होती हैं। तथा वे ही चिर-विलम्ब तथा क्षिप्र-शीघ्रता के व्याज से निमेष काल गणना का अति अल्पतम से लेकर परार्ध-कालक्रमगणना का अति महत्व काल परिणाम पर्यन्त काल चक्र को संसार चक्र गणना के अनुसार चक्र के समान सदा परिवर्त्तन-घूमाने या नचाने वाली हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण इस कालचक्र के कालों का विभाग सर्वाधारमयी श्रीसीताजी का ही है क्योंकि वे ही प्रकाशरूपा तथा काल रूपा भी होती हैं ॥१७॥

श्रीसीताजी के तृतीय अग्निरूप का निरूपण करते हैं-वे ही प्राणियों का अन्न पानादि कृत्य सम्पादनार्थ क्षुधा पिपासा के

श्रीदेवी त्रिविधं रूपं कृत्वा भगवत्सङ्कल्पानुगुण्येन लोकरक्षणार्थं रूपं धारयति श्रीरिति लक्ष्मीरिति लक्ष्यमाणा भवतीति विज्ञायते ।१९।

भू देवी स सागराम्भः सद्वीपा वसुन्धरा भूरादिच तुर्दशभुवनानामाधाराधेया प्रणवात्मिका भवति ॥२०॥

नीला च मुखविद्युत्मालीनी सर्वौषधीनां सर्वप्राणिनां पोषणार्थं सर्वरूपा भवति । समस्तभुवनस्याधोभागे जलाकारात्मिका मण्डूकमयेति भुवनाधारेति विज्ञायते ॥२१॥

रूप में भी होती हैं तो देवताओं के लिये मुख रूप से रहती हैं, तथैव वनौषधियों के हेतु शीत तथा उष्ण रूप से एवं काष्ठों में अन्दर तथा वाहर सर्वतो भाव से नित्य और अनित्य-कार्य रूप से यानी सर्वगत रूपतया विराजमान हैं ॥१८॥

इच्छाशक्ति के तीन भेदोंमें से भद्र कल्याण स्वरूपा के स्वरूप को दर्शाते हुये ब्रह्माजी देवताओं से कहते हैं देवताओ! पहली श्रीदेवी स्वरूपा श्रीसीताजी ही श्रीलक्ष्मी तथा लक्ष्यमाणा यों तीन रूपों को धारण करके षडैश्वर्यशाली अपने प्राणेश्वर श्रीराम जी के सत् संकल्पानुसार लोकरक्षा के लिये तीन रूपों को धारण करती हैं जो श्री लक्ष्मी एवं लक्ष्यमाण स्वरूपों वाली होकर जानी जाती हैं जिनका कि योगशक्ति, भोगशक्ति तथा वीरशक्ति के रूपमें आगे विवेचन होगा ॥१९॥

दूसरी भू देवी स्वरूपा श्रीसीताजी सागर से लेकर सात द्वीप के साथ पृथिवी भूः भुव आदि चौदह भुवनों की आधार तथा आधेयरूप होकर प्रणवात्मिका यानी सभी के ऊपर सर्वश्रेष्ठतया प्रणव स्वरूप से समवस्थित रहती हैं ॥२०॥

तीसरी नीला देव स्वरूपा श्रीसीताजी विद्युत माला के समान श्रीमुखमण्डल वाली सभी औषधियों यानी पेडपौधों तथा सभी

क्रियाशक्तिस्वरूपं हरेर्मुखान्नादः तन्नादाद्विन्दुः विन्दोरोंकारः । ओंकारात्परतो रामवैखनसपर्वतः । तत्पर्वते कर्म ज्ञानमयीभिर्बहुशाखा भवन्ति ॥२२॥

तत्र त्रयीमयं शास्त्रमाद्यं सर्वार्थदर्शनम् ।
ऋग्यजुः सामरूपत्वात् त्रयीति परिकीर्तिता ॥२३॥

प्राणियों यानी जीवोंके संपोषण के लिये सर्वरूपा तत्तत्स्वरूप वाली होती है। और समस्त भुवनों के अधोभाग में जलाकार स्वरूप वर्षा के अधिष्ठातृतया मण्डूकमयी-मण्डूकस्वरूप से तथा भुवनों के आधार रूपतया जानी जाती हैं ॥२१॥

सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के पहले १४ वें मन्त्र में इच्छा शक्ति क्रियाशक्ति तथा साक्षात् शक्ति इस प्रकार तीन भेद बतलाये थे, उनमें से प्रथम इच्छा शक्ति का निरूपण कर द्वितीय क्रिया शक्ति का निरूपण करते हैं। अर्थात् ७ वें मन्त्र में श्रीसीताजी को 'शब्द ब्रह्ममयी' कहा गया है उसी के अभिव्यक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुये ब्रह्माजी देवताओं से कहते हैं हे देवताओ ! सर्वशक्तिमयी श्रीसीताजी क्रिया शक्ति स्वरूप श्रीहरि के मुख से नाद उत्पन्न हुआ, उसी नाद से विन्दु प्रकट हुआ, अनन्तर उसी विन्दु से ॐ कार उत्पन्न हुआ जो वेद का आदि कारण है, ओंकारसे पर यानी ओंकार से श्री राम वैखानस पर्वत प्रकट हुआ यानी श्रीराम रूपी वैखानस-वेदरूप पर्वत या श्रीराम तत्त्व को प्रतिपादन करनेवाला वैखानस रूप शब्दराशी एक पर्वत के रूप में अर्थात अतिविशाल वेद साहित्य प्रकट हुआ। उस वेद राशीरूप पर्वत में कर्ममयी ज्ञानमयी बहुत से शाखायें होती हैं ॥२२॥

ब्रह्माजी ने कहा देवो ! वहां श्रीरामरूप वैखानस पर्वत पर त्रयीमय—त्रयीरूप सर्वार्थ दर्शन सर्व ज्ञानों या धर्म अर्थ काम

तस्या च कार्यसिद्धेन चतुर्धा परिकीर्तिता ।
ऋचो यजुंसि सामानि अथर्वाङ्गिरसस्तथा ।२४।।
चातुर्होत्र प्रधानत्वाल्लिङ्गादि त्रितयं त्रयी ।
अथर्वाङ्गिरसं रूपं साम ऋग्यजुरात्मकम् ।२५।।
तथा दिशन्त्यभिचारसामान्येन पृथक् पृथक् ।२६।
एकविंशतिशाखाया ऋग्वेदः परिकीर्तितः ।
शतं च नव शाखासु यजुषामेव जन्मनाम् ।२७।

तथा मोक्ष रूप सभी प्रयोजनों का प्रापक-साक्षात्कार कराने वाला आदि शास्त्र यानी ब्रह्मतत्त्व प्रतिपादक सर्वप्रथम प्रकट वेदादि शास्त्र हैं, जो ऋग्, यजुस् तथा साम के रूप में विभक्त होने से उसे त्रयो कहते हैं ।।२३।।

उसी त्रयी को कार्य कलाप-क्रिया भेद से ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तथा अथर्ववेद बों चार प्रकार से व्यवहार करते हैं ।।२४।।

नित्य या नैमित्तिक यज्ञ कार्यों में चातुर्होत्र की प्रधानता होने से कथित तीन लक्षण वाला होने से उसे त्रयी कहते हैं, सामवेद ऋग्वेद कथा यजुर्वेदात्मक यानी इन तीन वेद का एकत्रीकरण-एक संग्रह रूप ही अथर्वांगिरस अथर्ववेद का स्वरूप हैं २५

ऊपर वर्णित वेद के एक स्वरूप होते हुये भी अभिचारि यानी मारण मोहन वशीकर उच्चाटनादि विविध कर्मों की सामान्यता रूपतया उनका उक्त प्रकार से पृथक् पृथक् रूप से वर्णन किया गया है ।।२६।।

वाङ्मय स्वरूपा श्रीसीताजी चतुर्वेदात्मिका हैं. उन वेदों के प्रशाखा उपशाखाओं के निरूपणार्थ ब्रह्माजी कहते हैं तत्त्व जिज्ञासु देवताओ ! ऋग्वेद प्रधानतया इक्कीस २१ शाखा-आवान्तर विभागों में विभक्त हैं, तथा यजुर्वेद भी प्रधानतः एक सौ नव १०९ शाखा-आवान्तर प्रविभागों में विभक्त है ।।२७।।

साम्नः सहस्रशाखाः स्युः पञ्चशाखा अथर्वणः ।
वैखानसमतस्तस्मिन्नादौ प्रत्यक्षदर्शनम् ।२८।
स्मर्यते मुनिभिर्नित्यं वैखानसमतः परम् ।२९॥
कल्पो व्याकरणं शिक्षानिरुक्तं ज्योतिषं छन्दः, एता-
नि षडङ्गानि ।३०॥
उपाङ्गमयनं चैव मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मज्ञसेवितार्थं च वेद वेदोऽधिकं तथा ।३१॥

सामवेद के प्रधानतः एक हजार १००० शाखायें हैं, और अथर्व वेद के पांच ५ शाखाएं हैं, यों प्रधानतया ग्यारह सौ पैंतास ११३५ चारों वेदो के वर्णित शाखाएं हैं इन ऊपर वर्णित शाखाओं में प्रथम तथा प्रत्यक्ष फलप्रद दर्शन वैखानस मत हैं अन्य सभी आवान्तर भावी गौण हैं ॥२८॥

पूर्व मन्त्र में वैखानस मत को प्रत्यक्ष फलप्रद तथा आदि दर्शन बताया उसका कारण बताते हैं देवताओ ! यह मत सर्व-प्रधान इसलिए है कि मुनि-परतत्त्व मननशील धर्म शास्त्रों या तत्त्वों का सर्वदा अवगमन अनुगमनशील उपासकों द्वारा नित्य सर्वदा इस वैखानस मत का स्मरण-चिन्तन अनुध्यान किया जाता है अतः यह परम उत्कृष्ट है ॥२९॥

पूर्व वर्णित ११३५ शाखासम्पन्न वेद के शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योतिष तथा छन्द ये छ अंग हैं ॥३०॥

देवताओ ! इन अंगों से अतिरिक्त मीमांसा तथा न्याय का विस्तार उन वेदों के उपाङ्ग हैं, ये सब धर्मज्ञों के सेवनार्थ सदुपयोगार्थ हैं जो आकार में वेद से भी अधिक हैं ऐसा जानो ॥३१॥

निबन्धाः सर्वशाखा च समयाचारसङ्गतिः ।
धर्मशास्त्रं महर्षीणामन्तः करणसम्भृतम् ॥३२॥
इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गञ्च प्रकीर्तितम् ॥३३॥
वास्तुवेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्च तथा मुने !
आयुर्वेदश्च पञ्चैते उपवेदाः प्रकीर्तिताः ॥३४॥
दण्डो नीतिश्च वार्ता च विद्या वायुजयः परः ।
एकविंशतिभेदोऽयं स्वप्रकाशप्रकीर्तितः ॥३५॥

देवो ! पूर्व वर्णित सम्पूर्ण शाखा-प्रशाखा तथा निबन्ध प्रभृति समयाचार यानी युगधर्मों तथा भिन्न भिन्न कार्यकलापों में किये जाने वाले धर्म सम्बन्धी संगति अर्थात् सामञ्जस्य-ताल मेल है अतः उनकी मूल वेदों से विसंगति नहीं है। तथा वेदार्थों के समुपबृंहक धर्मशास्त्र मन्त्र द्रष्टा महर्षियों के अन्तकरण से कार्यकलापानुरूप समय समय पर प्रस्फुटित होते हैं अतः श्री बशिष्ठ वाल्मीकि प्रभृति धर्मशास्त्र की भी विसंगि मूलशास्त्र से नहीं है।३२।

इतिहास श्रीरामायण महाभारत प्रभृति तथा पुराण ये सब वेदों के उपांग कहे गये हैं जो श्रीवाल्मीकि श्रीव्यासप्रभृति महान् ऋषियों के ऋतंभरा प्रज्ञा से प्रस्फुटित हैं जिनके स्वाध्याय बिना वेदाध्ययन तथा उनका रहस्य ज्ञान अपूर्ण ही रहत है ॥३३

सु तत्त्व मननशील देवताओ ! वास्तुवेद धनुर्वेद गान्धर्ब-वेद तथा आयुर्वेद ये पांच उपवेद कहे गये हैं जो वेदो के गूढ रहस्य जानने के लिये पर- उपयोगि हैं ॥३४॥

दण्डविधानशास्त्र नीतिशास्त्र वार्ताशास्त्र मुक्तिसाधन भूतविद्या वायुजय ईश्वरप्रणिधानादि साधनरूप योग शास्त्र या परपुरुष श्री रामजी के साक्षात्कार के साधन प्रभृति ये सभी इक्कीस भेद स्वप्रकाश यानीं वेदा के आन्तरिक स्वरूप के प्रकाशक कहे जाते हैं अर्थात् इन सर्वों से वेदात्मा प्रकाशित होता है ॥३५॥

वैखानसऋषेः पूर्वं विष्णोर्वाणी समुद्भवेत् ।
त्रयीरूपेण संकल्प्य इत्थं देही विजृम्भते ॥३६॥
संख्यारूपेण संकल्प्य वैखानसऋषेः पुरा ।
उदितो यादृशः पूर्वं तादृशं श्रृणु मेऽखिलम् ॥३७॥
शश्वद् ब्रह्ममयं रूपं क्रिया शक्तिरुदाहृता ॥३८॥

साक्षाच्छक्तिर्भगवतः स्मरणमात्ररूपाविर्भावप्रादुर्भावात्मिका, निग्रहानुग्रहरूपा, शान्तितेजोरूपा, व्यक्ताव्यक्तकारणचरणसमग्रावयवमुखवर्णभेदरूपा, भगवत्सहचारिणी, अनपायिनी, अनवरतसदाश्रयिणी, उदितानुदिताकारा, निमेषोन्मेषसृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहादि-सर्वशक्तिसामर्थ्यात् साक्षाच्छक्तिरितिगीयते ॥३९॥

तत्त्व जिज्ञासु देवताओ ! पूर्व-सृष्टि के आदि काल में वैखानस ऋषि के अन्तःकरण में विष्णु सर्व व्यापक श्रीरामजी की वाणी-सर्व कल्याणमयी एकात्मिका वेद वाणी प्रस्फुरित हुई, ये देही शरीरधारी साधक वर्ग उसी वाणी को त्रयी-ऋक् यजुः तथा साम रूप से अलग अलग कल्पना करके उत्तरोत्तर प्रगति करते हैं।३६

देवो ! अन्तकरण में प्रस्फुटित वेदवाणी वाले वैखानस ऋषि ने पहले त्रयी को ज्ञानरूप से संकल्प करके जिस प्रकार प्रकट किया कथन किया है उसे सावधानतया पूर्ण रूपेण वर्णन करता हूं, दत्तचित्त होकर सुनें ॥३७॥

इससे पूर्व प्रसंगों में वर्णित श्रीसीताजी क्रियाशक्ति रूपा से कथित हैं वे ही शाश्वत ब्रह्ममय हैं यानी क्रिया शक्तिस्वरूपा श्रीसीताजी ही समस्त वाङ्मय रूपा अर्थात् शब्द स्वरूपा निरूपित है अतः शब्द ब्रह्मरूपा तथा परब्रह्म रूपा भी वे ही हैं ॥३८॥

इच्छाशक्तिस्त्रिविधा, प्रलयावस्थायां विश्रामार्थं भगवतो दक्षिणवक्षस्थले श्रीवत्साकृतिर्भूत्वा विश्राम्यतीति सा योगशक्तिः ॥४०॥

पूर्व १४ वें मन्त्र में इच्छा शक्ति क्रिया शक्ति तथा साक्षात् शक्ति यों तीन प्रकार बतलायागया था। पहले दो का निरूपण कर तीसरी के निरूपणार्थ ब्रह्मा जी कहते हैं देवताओ! जैसे श्री रामचन्द्रजी भूतवर्ग के उत्पत्ति प्रलय अगति गति विद्या और अविद्या के स्वरूप को यथार्थत जानने या नियन्त्रण करने के कारण भगवान् कहलाते हैं तथैव श्रीरामजी से अभिन्न एक रूप होने से षडैश्वर्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी की साक्षात् शक्ति श्री सीताजी स्मरण संकल्प मात्र से रूपादि-चक्षुः ग्राह्य पदार्थों को आविर्भाव तथा प्रादुर्भाव यानी जीवों के स्वस्वअदृष्टानुसार प्रकट तथा प्रकाशित करनेवाली हैं, और निग्रह तथा अनुग्रह रूपा यानी शासन करके कृपापूर्वक दया करने वाली हैं और शान्तिरूप तथा तेज स्वरूप हैं. तथा व्यक्त-महदादि कार्यरूप चौवीस भेद वाली और अव्यक्त-प्रकृति पुरुषों के कारणरूपा तथा चरण-उन सभी के कार्य और भरण-पोषणादि के साधन स्वरूपा, और समग्र सभी अंग नेत्र कर्ण नासिका रसना हाथ आदि मुख वर्ण रूप भेद और अभेद भिन्न तथा अभिन्न स्वरूप वाली, भगवत् श्रीरामजीकी नित्यसहचारिणी यानी सर्वदा श्रीरामचन्द्रजी के साथ में संचरण करने वाली, अनपायिनी अविनाशिनी और अनवरत सतत सहश्रयिणी श्रीरामका अवम्लन करनेवाली, और श्रीरामजी से उदित कथित इंगित तथा अनुदित अकथित इसारा नहीं किये गये स्वरूपों को भी यथार्थरूप से जानकर सभी कार्यों को सम्पादन करनेवाली तथा निमेष-आँख के पलक गिरने के समय के अन्दर ही अनन्त सृष्टि स्थिति तथा उन्मेष पलक उघडते ही संहार और तिरोधान तथा अनुग्रह आदि सम्पूर्ण शकित से सर्वदा सम्पन्न होने के कारण सामर्थ्यातिशय-अति शक्तिशाली होने से साक्षात् शकित के रूप में सभी शास्त्रों में गाई जाती है ॥३९॥

पूर्व १४ वें मन्त्र में विवेचित इच्छा शक्ति ही योगशक्ति भोग शक्ति तथा वीरशक्ति के भेद से तीन प्रकार की होती है

भोगशक्तिर्भोगरूपा । कल्पवृक्षकामधेनुचिन्तामणिः शङ्खपद्मनिध्यादिनवनिधिसमाश्रिता ॥४१॥

भगवदुपासकानां कामनया अकामनया वा भक्तियुक्तनरं नित्यनैमित्तककर्मभिरग्निहोत्रादिभिर्वायमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिभिर्वालमनण्वपि गोपुरप्राकारादिभिः विमानादिभिः सह भगवद्विग्रहार्चा

जो प्रलय दशा में आराम करने के लिये परपुरुष श्रीरामजी के दक्षिण वक्ष-हृदय प्रदेश में श्रीवत्स-अति शोभायमान हृदय श्री चिह्न की आकृति धारण करके विश्राम करती है वह शक्ति योग-शक्ति यानी श्रीरामचन्द्रजी की एकाकारात्मिका शक्ति है ॥४०॥

दूसरी भोग शक्ति रूपा श्रीसीताजी परमेश्वर के भोगरूपा हैं कल्पवृक्ष कामधेनु तथा चिन्तामणि-ये तीनों से ही जो जो वस्तुयें मागी जाती हैं वे मिलजाती हैं, शंखपद्म निधि आदि नव-निधि यानी महापद्म पद्म शंख मकर कच्छप कुन्द मुकुन्द नील सर्व नामों से प्रसिद्ध नवनिधि में निवास करती हैं ॥४१॥

भगवान् यानी षडैश्वर्य सम्पन्न श्रीरामजी की उपासना करने वाले साधकों की इच्छा से या अनिच्छा से भी ईश्वर में भक्ति युक्त जीवों को नित्य और नैमित्तिक अग्निहोत्र तथा राहूपरागादि कर्मों के द्वारा या यम यानी अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, नियम अर्थात् शौच संतोष तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान, आसन सुखपूर्वक अधिक समय तक वैठा जासके वह, प्राणायाम यानी जिसके सिद्ध होजानेपर स्वास प्रस्वास की गति का विच्छेद होजाता है, प्रत्याहार यानी अपने विषयों में इन्द्रियों को प्रवृत्त करने पर भी विषयों से अलिप्त सा रहना धारणा चित्तका एक देश विषय में नियत होजाना, ध्यान ध्येय वस्तु ईश्वरमें एकतान होजाना और समाधि यानी अपने लक्ष्यभूत ध्येय

पूजोपकरणैरर्चनैः स्नानादिभिर्वा पितृपूजादिभिरन्नपानादिभिर्वाभगवत्प्रीत्यर्थमुक्त्वा सर्वं क्रियते ॥४२॥

अथातो वीरशक्तिश्चतुर्भुजाऽभयवरदपद्मधरा, कीरीटाभरणयुता सर्वदेवैः परिवृता, कल्पतरुमूले चतुर्भिर्गजैर्रत्नघटैरमृतजलैरभिषिच्यमाना, सर्वदेवतैर्ब्रह्मादिभिर्वन्द्यमाना, अणिमाद्यष्टैश्वर्ययुता, संमुखे कामधेनुना, वेदशास्त्रादिभिः स्तूयमाना जयाद्यप्सरस्त्रीभिः परिचर्यमाणा, आदित्यसोमाभ्यां दीपाभ्यां प्रकाश्यमाना, तुम्बुरुनारदादिभिर्गीयमाना, राकासिनीवालीभ्यां छत्रेण ह्लादिनीमायाभ्यां चाम-

वस्तु ईश्वर में वाह्यपदार्थों को सर्वथा विस्मृत कर एक चित्त से स्थित होजाने से या तो किसी रूप से ईश्वर की उपासना करने वालों के लिये गोपुर दिव्यधाम श्रीसाकेत का द्वार, प्रकार दिव्य धाम का परा विमान पुष्पकविमान आदि के साथ भगवद् श्रीरामचन्द्रजीके दिव्यातिदिव्य अर्चाविग्रहको यथा विधिपूजा ईश्वर की पूजा की सामग्री के द्वारा यथा शास्त्र पूजन के द्वारा, या स्नान शृंगारादि के द्वारा, या पितृपूजा आदि से अथवा अन्न विशुद्ध भोज्य पान पेयादि वस्तुओं से आराध्यदेव की आराधना सम्पादन करे इस बुद्धि से कि यह सब मेरे आराध्य देव के प्रसन्न करने के लिये है मेरे उपभोग या आराम के वास्ते नहीं यानी सब क्रियायें भगवत् प्रीत्यर्थ कर उन्हें अर्पित पदार्थ का ही उपभोग करे ईश्वर को अर्पण किये विना कोई पदार्थ अपने उपयोग में न लें अन्यथा पाप का भागी होता है ॥४२॥

अब इच्छाशक्ति के तीसरा भेद वीरशक्ति का निरूपण करने के लिए ब्रह्माजी देवों को कहते हैं देवताओ ! सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के शक्ति में से अन्तिम वीरशक्ति रूप श्रीसीताजी चार

रेण स्वाहा स्वधाभ्यां व्यजनेन भृगुपुण्यादिभिरर्च्यमाना, देवी दिव्यसिंहासनेपद्मासनारूढा, सकलकारण कार्यकारी,

हाथ वाली हैं, उन हाथों में से एक शरणापन्न सभी जीवों को अभय प्रदान करने वाली अभय मुद्रा, दूसरा इप्सित वस्तुओं को प्रदान करने वाली वरद मुद्रा तथा शेष दो हाथों में पद्म कमल को धारण किया हुआ है। तथा वे किरीट और अन्य आभूषणों से विभूषिता है। और सभी देवताओं से चारों ओर से घिरी हुई हैं। तथा कल्पवृक्ष के मूल-नीचे में रत्नमण्डप पर चार श्वेत हाथियों द्वारा अमृतमय-अमृतरूप स्वच्छ जलपूर्ण रत्नों के घटों से स्नान करती हैं, ब्रह्मा शंकर इन्द्रादि सभी देवताओं से वन्दना की जारही है। वे अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व तथा वशित्व रूप आठ ऐश्वर्य से युक्त हैं तथा श्रीसीता जी रूप वीर शक्ति के सामने सभी प्रकार के विभूतिदात्री कामधेनु गाय स्तुति करती है, तथा वेद तथा अन्य शास्त्रों से भी स्तुति की जारही हैं। जया आदि अप्सरारूप स्त्रियां से परिचर्यमाण सेव्यमान हैं—उनसे सेवा की जारही हैं, आदित्य-सूर्य, तथा सोम—चन्द्रमा दीपक के रूप में प्रकाश कर रहे हैं। तुम्बुरु तथा नारद आदि उनके दिव्यगुणों के गान कर रहे हैं। राका पूर्णिमा तथा सिनीवाली-अमावश्या ये दोनों दिव्य छत्र लगाई हुई खडी हैं, आह्लादिनी एवं माया ये दोनों भक्ति पूर्वक चंवर डुला रही हैं, स्वाहा और स्वधा पंखा झल रही हैं। भृगु तथा पुण्य प्रभृति महर्षियों से सविधि पूजी जारही हैं, ऐसी वीर शक्तिरूपा देवी सर्वाराध्य श्रीसीताजी दिव्य-अलौकिक शक्ति सम्पन्न सिंहासनों में पद्मासन से विराजमान हैं जो सकल-सम्पूर्ण कारण रूप तथा सम्पूर्ण कार्यों को सम्पादन करने वाली हैं। इस पूर्व वर्णित रूप से देवताओं या साधकों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाली लक्ष्मी-वीर शक्ति स्वरूपा श्रीसीताजी की

लक्ष्मीर्देवस्य पृथग्भवनकल्पना, अलंकारस्थिरा, प्रसन्न-लोचना, सर्वदेवतैः पूज्यमाना, वीरलक्ष्मीरिति विज्ञायते, इत्युपनिषद् ॥४३॥ ॐ भद्रं कर्णेभिरितिशान्तिः ।

पृथक् कल्पना की गई है जो स्थिर-नित्य अलंकार स्वरूपा प्रसन्न लोचना यानी सर्वदा हर्षित रहने वाली तथा सभी देवताओं द्वारा सर्वदा पूजित वीर लक्ष्मी या शक्ति के रूपमें सभी लोगोंसे जानी जाती हैं यानी श्रीसीताजी एक रूपा हैं तथापि कार्यकलापों के भेद से भिन्न भिन्न रूप में जानी तथा पूजी जाती हैं ॥४३॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

श्रीरामः शरणं मम

इति जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत

श्रीसीतोपनिषद्

प्रकाशः

श्रीसीतारामार्पणमस्तु

श्रीसीतारामाभ्यां नमः
श्रीहनुमते नमः
प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः

वशिष्ठसंहिता

नारदपाञ्चरागम श्रीवैष्णव तन्त्र का उपजीव्य आगम है जिसकी प्रामाणिकता श्रुति से कम नहीं है वेद के शाखाओं के समान इसके अनेक शाखा-संहिताओं में से आज कतिपय संहिता ही उपलब्ध हैं उसमें भी श्रीविशिष्ठ संहिता की आनुपूर्वी आज तक दृष्टिपथ नहीं होरही है। श्रीसम्प्रदाय की इस अमूल्यनिधि पर उन्हीं क्रूर विदेशी आक्रामकों की दृष्टि पड़ना तथा जातवेदा का आहार होना निश्चित है जैसे अन्य वेदादि अनेक शास्त्र अग्निसात कर दिये गये थे। या सवर्ण बन्धुओं के इर्ष्यालु-श्रीरामानन्दसम्प्रदायोत्कर्षासहिष्णुपना के शिकार हुये हों जैसे श्रीबोधायन वृत्ति प्रभृति पूर्वाचार्यों के अनेक महाप्रबन्ध हुये हैं। जो हो सम्प्रति श्रीवशिष्ठ संहिता के पांचेक प्रकरण श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के इतिहास में संग्रहित हैं उन पांचों संहिताओं को अति संक्षिप्त हिन्दी विवरण के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय का सर्वस्व भूत श्रीवाल्मीकि संहिता जो जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य पीठ पत्रिका के माध्यम से जनता तक पहूंची यद्यपि वह अति संक्षिप्त विवरण था मेरे अनवधानता से यत्र तत्र अनपेक्षित त्रुटियां भी रह गई थी तथापि साधकों ने उसका बहुत आदर किया यथायोग्य लाभ उठाया साथ में साग्रह प्रेरणादी श्रीसंप्रदाय की निधि श्रीवशिष्ठसंहिताओं का संकलन कर राष्ट्रभाषा हिन्दी से अलंकृत कर प्रचार-प्रसार करें ताकि प्रत्येक परमपथ का साधक लाभ उठालें।

संहिता शास्त्र जैसे अतिगहन रहस्यमय तन्त्र में कलम उठाना कोई सामान्य बात नहीं उसमें भी मेरे जैसा अल्पश्रुत साहस करे यह केवल साहस मात्र है तथापि साधकों की सत्प्रेरणा से प्रेरित होकर प्रवृत्त होरहा हूं, इसे अपनी वस्तु जानकर चारुता का ग्रहण करें अप्रासंगिकानुभवों को मेरी अल्पज्ञता क कारण समझकर कृपापूर्वक चितसू करें ताकि पुनरावृत्ति में उस ओर ध्यान दे सकूं। इसमें श्रीवशिसंहिता के १–श्रीसीतारामाभेद २–श्रीसीताष्टाक्षरस्तोत्र ३–श्रीसीतारामनमस्काराष्टक ४–आश्रमधर्म निरूपण ५–परात्पर श्रीरामधामवर्णन ६–परात्परोपाय श्रीरामस्तवः ७–परमोपेय श्रीरामस्तवः इन सात संहिताओं का संग्रह किया जा रहा है। इनमें से प्रथम में ५० श्लोक हैं। श्रीपराशरजी के प्रार्थना करने पर श्रीवशिष्ठजी ने मन्त्रराज की परंपरा का वर्णन किया है तथा श्रीमारुतिजी के जिज्ञासा करने पर श्री जनकनन्दनीजीने श्रीरामजीसे अपना अभिन्न प्रतिपादन किया है और श्रीब्रह्माजी के द्वारा अपनेको महामन्त्र प्रदानकरने वाले श्रीहनुमानजीकी स्तुतिका उल्लेख है। द्वितीयमें१५ श्लोक हैं। श्रीअंगदजीके जिज्ञासा करनेपर श्रीहनुमानजीसे संस्तुत स्तोत्रकावर्णन उन्होंने ही किया है। तृतीयमें आठ श्लोक है श्रीवशिष्ठजीके द्वारा श्रीसीतारामजीकी स्तुतिकी गई है। चतुर्थ में बयालीस श्लोक हैं श्रीभरद्वाजजी के जिज्ञासा करने पर श्रीवशिष्ठजीने श्रीवैष्णवों के आश्रम आश्रमके धर्म तथा वेश-भूषा आदि का निरूपण किया है। पांचवे में एक सौ छयहत्तर श्लोक हैं, जसमें श्रीरामचन्द्रजी का परत्व प्रतिपादन के साथ परात्पर श्री रामधाम अयोध्या–साकेत का अन्य धामोंके वर्णनपूर्वक विस्तार से वर्णन किया गया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। गोलोक वैकुण्ठलोक प्रभृतिकी स्थिति की चर्चाकर साकेतधाम वर्णनमें पर्यवसान किया गया है। छठे में इक्कीस श्लोक हैं सायुज्यमुक्ति में परम उपाय भूत पर ब्रह्म श्रीरामजी की स्तुति ब्रह्मर्षि श्रीवष्ठिजी से की गई है। सातवेंमें पन्द्रह श्लोक है साधकों द्वारा उपेय पराभक्तिके द्वारा प्राप्य सर्वेश्वर श्रीरामजीकी स्तुति महर्षि श्रीविश्वामित्रजीसे की गई है।

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामेश्वरानन्दाचार्य

श्रीसीतारामाभ्यां नमः
प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः
वशिष्ठसंहितास्थः

ॐ श्रीसीतारामाभेदः ॐ

वशिष्ठं ब्रह्मरामज्ञमुपगम्य पराशरः ।
प्रणम्य दण्डवत् प्राह दयासिन्धो ! जगद्गुरो ! ॥१॥

सर्वेश्वर श्रीसीतारामाय नमः

जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य रामेश्वरानन्दाचार्य प्रणीत-प्रकाश

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्न गुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

साधकों को सायुज्यमुक्ति रूप स्वजीवनलक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सदाचार्य से सविधि मन्त्र राज श्रीराम महामन्त्र को प्राप्त करना जितना आवश्यक है उतनाही आवश्यक उसकी परम्परा जानने की भी अतः स्वपितामह श्रीब्रह्माजी के मानस पुत्र ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी से षडक्षर मन्त्रराज प्राप्त करने के बाद श्रीपराशरजी गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी से अपनी—श्रीतारक मन्त्रराज की परम्परा जानने के लिए प्रार्थना करते हैं

यह श्रीसम्प्रदाय सर्वेश्वर श्रीरामजी से प्रारम्भ होता है जिसका वर्णन श्रीमैथिली महोपनिषद् निम्नरूप से करती है 'इममेव मनुं पूर्वं साकेतपतिर्मामवोचत् । अहं हनुमते मम प्रियाय प्रियतराय । स वेदवेदिने ब्रह्मणे, स वशिष्ठाय, स पराशराय, स व्यासाय, स शुकाय' अर्थात् सर्वेश्वरी श्रीसीताजी ऋषीश्वरों को मन्त्रराज षडक्षर महामन्त्र के परम्परा के विषय में कहती हैं —यही (रां रामाय नमः) षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को दिव्य लोक

कृपां कृत्वा यथा देव ! दत्तो मे तारकस्त्वया ।
तथाऽनुगृह्य मां ब्रूहि मन्त्रराजपरम्पराम् ॥२॥

शृणु वदामि ते वत्स ! मन्त्रराजपरम्पराम् ।
यस्याश्च वन्दनाद् रामश्चात्यन्तं हि प्रसीदति ॥३॥

में श्रीसाकेताधिनायक सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ने मुझे कहा यानी सविधि उपदेश दिया, मैंने मेरे प्रियातिप्रिय सेवक मरुतनन्दन श्रीहनुमानजी को यथाशास्त्र विधि विधान से उपदेश दिया, श्रीहनुमानजी ने भी शास्त्र विधि विधानके अनुसार वेदके ज्ञाता श्रीब्रह्माजी को उपदेशदिया श्रीब्रह्माजी ने भी शास्त्रविधान के अनुसार ही मानस पुत्र श्रीवशिष्ठजी को उपदेशदिया, श्रीवशिष्ठजी ने शास्त्रीय विधि से श्रीपराशरजी को उपदेशदिया, श्रीपराशरजी ने शास्त्रीय विधानानुसार श्रीव्यासजी को उपदेशदिया, तथा श्रीव्यासजी ने भी शास्त्रानुसार ही श्रीशुकदेवजी को उपदेशदिया, इसी रहस्य मय श्रीसम्प्रदाय की परम्परा की जिज्ञासा से स्वगुरुदेव से सानुनय प्रार्थना करते हैं—

श्रीसम्प्रदाय के छठे आचार्य श्रीपराशरजी श्रीसम्प्रदाय के पांचवें आचार्य पर ब्रह्म श्रीरामजी के स्वरूप को यथार्थ रूप से जानने वाले श्रीवशिष्ठजी के पास जाकर हे जगद्गुरु ? हे दयासिन्धु ? इस प्रकार कहते हुये दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर विनीत रूप से कहने-निवेदन करने लगे ॥१॥

हे देव ? सर्व समर्थ श्रीगुरुदेव ? जैसे आपने मुझपर कृपा करके तारक मन्त्रराज षडक्षर का उपदेशदिया तथैव इस आप के सेवक पर अनुग्रह करके मन्त्रराज षडक्षर श्रीराम महामन्त्र की परम्परा का भी उपदेश करें ताकि उस परम्परा का अनुसन्धान कर श्रेयोभागी बनूं ॥२॥

सृष्टयादौ च सिसृक्षुः श्रीरामोविधिंविधाय हि ।
सृष्टये प्रेषयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम् ॥४॥
तथाऽप्यर्थावबोधस्याभावाद् विधिः ससर्ज न ।
जातायामीशभक्तौ च गुरुभक्तिर्यतो नहि ॥५॥
भक्तिद्वये यतश्चास्ति तत्त्वप्रकाशहेतुता ।
ततो वेदार्थबोधो न गुरोर्भक्तेरभावतः ॥६॥

पूर्वोक्त प्रकार से श्रीपराशरजी के प्रार्थना करने पर श्रीवशिष्ठजी ने कहा वत्स ? हे प्रिय शिष्य पराशर ? श्रीमन्त्रराज की परम्परा तुम्हें कहता हूं उसे सावधान होकर सुनो जिस परम्परा का स्मरण कर प्रेम पूर्वक पूर्वाचार्यों की वन्दना करने से श्रीमन्त्रराज के अधिष्ठाता सर्वेश्वर श्रीरामजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं ॥३॥

हे पराशर ? श्रीमन्त्रराज जिसका की मैंने तुम्हे उपदेशदिया है की परम्परा के प्रारम्भ की एक दिव्य घटना हैं उसे सुनो वह यों है–सृष्टि के आदि काले में सृष्टि की इच्छा से श्रीरामजी ने 'एकोऽहं बहु स्याम' इस वेद वचनानुसार अपने सत् संकल्प से विधि–ब्रह्माजी की सृष्टि की 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' इस वेद वचनानुसार ब्रह्माजी की सृष्टि कर उन्हे वेद पढाया अनन्तर ज्ञानके महानिधि ब्रह्माजी को विस्तृत सृष्टि करने के लिये भेजे. यानी आज्ञादी कि सृष्टि के क्रम को विस्तार करो ॥४॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से सृष्टि करने की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने सृष्टि के लिये प्रयत्न किया पर वेद के अर्थो का वोध न होने के कारण ब्रह्माजी सृष्टि नहीं कर सके कारण कि उनमें ईश्वर-श्रीराम विषयक भक्ति हो जानेपर भी अभीतक श्रीरामजीमें गुरु विषयक भक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी ॥५॥

ततो रामस्य खेदं हि समुद्वीक्ष्य च मैथीली ।
गृहीत्वा विधिवद् रामान्मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥७॥
हनुमते च दत्त्वा तं राममन्त्रं षडक्षरम् ।
विधये मन्त्रदानाय प्रेरयामास मारुतिम् ॥८॥

श्रीहनुमानुवाच

न दत्त्वा स्वीयमन्त्रं त्वमन्यमन्त्रमदाः कथम् ? ।

पराशर ? तत्त्व ज्ञान यानी वास्तविक वेद ज्ञान प्राप्ति में कारण केवल ईश्वर ज्ञान नहीं उसमें गुरु भक्ति तथा ईश भक्ति दोनों ही कारण हैं इसलिये ब्रह्माजी में गुरु भक्ति के अभाव होने से वेदार्थ का वास्तविक बोध नहीं हुआ, तत्त्व ज्ञान के अभाव में सृष्टि न कर सके स्तम्भित हो कर रहगये ॥६॥

सृष्टि कार्यमें असमर्थ होकर विमोहित ब्रह्माजीको देखकर श्रीरामचन्द्रजी भी दुःखित हुये,अपने प्राणेश्वर को दुखीत देखकर तथा समस्या को समझकर श्रीमैथिलीजी ने सर्वेश्वर श्रीरामजी से शास्त्र विधि के अनुसार मन्त्रराज षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को ग्रहण कर के अन्यों को इस श्रीमन्त्रराज का उपदेश देदेने की आज्ञा भी प्राप्त करलीं ॥७॥

हे पराशर ? ब्रह्म तारक षडक्षर महामन्त्र के प्रचार की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर श्रीसीताजी ने उस षडक्षर श्रीराम महामन्त्र को शास्त्रीय विधान के अनुसार श्रीहनुमानजी को दे कर श्रीब्रह्माजी को सविधि श्रीराम महामन्त्र का उपदेश देने के लिये श्रीमारुति जी को प्रेरित किया यानी श्रीसीताजी ने श्रीहनुमानजी को आज्ञा दी कि श्रीब्रह्माजी को मन्त्रराज की दीक्षा दे कर गुरु महत्व का भी उपदेस करो ताकि वे श्रीरामजी की आज्ञानुसार सृष्टि कार्य में समर्थ हो सकें ॥८॥

श्रीमैथिल्युवाच

एवं पृष्टाऽऽञ्जनेयेनावदत् सा शृणु मारुते ! ॥९॥
प्राणादप्यधिको मह्यं प्रेयान् रामो वराननः ।
यथा रामस्तथाऽहं च भेदः कश्चिन्न चावयोः ॥१०॥
शीतताहि यथा नीरे तथाऽहं राघवे स्थिता ।
गन्धवत्वं यथा भूम्यां स्थितो रामस्तथा मयि ॥११॥

सर्वेश्वरी श्रीसीताजी की आज्ञानुसार श्रीहनुमानजी नेशास्त्रविधि के अनुसार श्रीब्रह्माजी को श्रीराममहामन्त्र की दीक्षादी श्रीगुरुमहत्व का उपदेशदिया अन्तर श्रीसीताजी की वन्दना पूर्वक श्रीहनुमान्जी ने कहा माताजी ? मेरे मन में एक शंका है उसका आप निवारण करदें ? वह यह कि आपने अपना महामन्त्र की दीक्षा –शिक्षा मुझे न दे कर अन्य–श्रीराममहामन्त्र की दीक्षा क्यों दी ? तथा इसी की दीक्षा ब्रह्माजी को देकर विशद प्रचार–प्रसार की आज्ञा क्यों दी ?

पूर्वोक्त प्रकार से विनीत भाव से श्रीअञ्जनीनन्दनजी से प्रार्थना की गई श्रीमैथिलीजी ने कहा वत्स ! हे मरुतनन्दन ! जिस विषय में तुम ने आशंकाकी है उसका रहस्य सावधान तया सुनो ॥९॥

श्रीअञ्जनीनन्दन ? अत्यन्त सुन्दर मुखाकृति वाले विश्व मोहक श्रीरामजी मुझे मेरे प्राण से भी अधिक प्रिय हैं, अतः जैसे श्रीरामजी हैं वैसे ही मैं भी हूं, हम दोनों में थोड़ासा भी भेद नहीं है ॥१०॥

हे मरुतनन्दन ? जैसे पानी में शीतता–ठण्डापना अभिन्न रूप से रहती है उसी प्रकार से मैं श्रीराघवजी में स्थित हूं और जैसे भूमि में गन्ध सदा अभिन्न स्वरूप से रहता है उसी प्रकार

इच्छाम्यहं न किञ्चिद्धि कर्त्तुं रामेच्छया विना ।
मां विना न च रामोऽपि किञ्चित् कर्त्तुं समीहते ॥१२॥
सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा ।
षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाऽहं स्वभावतः ॥१३॥
सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेव हि मारुते ! ।
स्वे महिम्नि स्थितावावामन्याधारोन चावयोः ॥१४॥
सच्चिदानन्दरूपश्च मादृशो राघवोऽपि हि ।
मादृशो राघवश्चापि सर्वस्याराध्यतां गतः ॥१५॥

से श्रीरामजी भी मुझ में सदा अभिन्न रूप से स्थित हैं ॥११॥

वत्स ? मैं श्रीरामजी की इच्छा के विना कुछ भी करने की इच्छा नहीं रखती यानी श्रीरामाज्ञा के विना मैं कुछ भी नहीं करती तथैव मेरे विना श्रीरामचन्द्रजी भी कुछ करने की इच्छा नहीं रखते हैं ॥१२॥

हे हनुमान ? जैसे भगवान् श्रीरामजी सर्वेश्वर यानी सभी के ईश्वर—आराध्यदेव तथा शासक हैं वैसे ही मैं भी सर्वेश्वरी अर्थात् सभी की आराध्या और शासिका हूं, तथा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तथा तेज प्रभृति छओं ऐश्वर्यादि गुणों से सदा सम्पन्न रहते हैं तो मैं भी स्वभावत—आपो आप—स्वतः सिद्ध षड्गुणादि सम्पन्ना हूं ।१३।

हे मरुतनन्दन ? चराचर सम्पूर्ण विश्व का आधार भूत प्रधान तत्त्व हम दोनों ही हैं यानी सवविश्व हम दोनों में ही टिका है और हम दोनों अपनी ही महिमा यानी स्वसत्त्व में स्थित हैं हम दोनों का अन्य कोई आधार भूत तत्त्व या सत्त्व नहीं हैं अर्थात् हम दोनों किसी में आधारित न होकर स्वतः अपनी सत्ता में ही स्थित हैं ॥१४॥

सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ ।
नित्यलीला विभूत्योस्तच्चावां नाथौ श्रुतौ श्रुतौ ॥१६॥
दिव्यदेहगुणो रामो दिव्यदेहगुणा ह्यहम् ।
भक्त्या मुक्तिप्रदो रामो तथा चाहं मता बुधैः ॥१७॥
पूज्यौ स्तुत्यौ तथाऽमोघौ कीर्तनीयौ समावथ ।
चिन्तनीयौ प्रणामार्हावावां हृश्यावभीष्टदौ ॥१८॥

आञ्जनेय ? जैसे मैं सत् चित् तथा आनन्द स्वरूप वाली हूं तथैव श्रीराघवजी भी सत्चित् और आनन्द स्वरूप ही हैं तथा जैसे मैं सभी की आराधनीया हूं वैसे ही श्रीरघुकुलनन्दन भी सभी के आराधनीय हैं ।१५।

हे हनुमानजी ? हम दोनों ही उपासकों को उनकी भावना के अनुसार सभी प्रकार के फलों को देने वाले हैं, नित्य हैं और सर्वशेषी भी हम दोनों ही हैं । तथा नित्य विभूति—परमदिव्य धाम श्रीसाकेत और लीलाविभूति—अवतार काल में भूलोकादि में भी नित्य अभिन्नतया रहने वाले उभय विभूति के नाथ—सर्वाधार भूत ईश्वर हमदोनों ही हैं ऐसा श्रुति और स्मृति आदि में विपुल वर्णन है ॥१६॥

वत्स ? श्रीरामजी दिव्य देह तथा अनन्त दिव्यगुण वाले हैं, और मैं भी दिव्य देह तथा अनन्त दिव्यगुण वाली हूं, सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी साधक जीवों को भक्ति से सायुज्य मुक्ति देने वाले हैं तो मैं भी भक्तिसम्पन्न साधकों को सायुज्य मुक्ति देनेवाली हूं ऐसा वेदादिशास्त्र तथा बुधजनों से प्रति पादित है ॥१७॥

श्रीमरुतनन्दन ? वेदादिसर्व शास्त्र निरूपित पूजनीय तथा स्तुति करने योग्य हम दोनों ही हैं, और समान भावना से कीर्तनीय

आवां तौ हि यतः कश्चिन्नाधिको न च यत्समः ।
सर्वात्मानौ मतौ चावां सर्वेषां प्रेरकौ तथा ॥१९॥
सूक्ष्माचिच्चिद्द्वयेनावां विशिष्टौ प्रलये किल ।
सृष्टावावां विशिष्टौ तु स्थूलाचिच्चिद्द्वयेन हि ॥२०॥
सत्यकामौ तथा चावां सत्यसंकल्पतां गतौ ।
शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये ॥२१॥

भी हमदोनों ही हैं क्योंकि हमदोनों का दर्शन पूजा स्तुति और कीर्तन अमोध-निश्चित रूप से फलप्रद है, तथैव चिन्तन-मनन ध्यान करने योग्य प्रणाम करने योग्य और दर्शन करने योग्य भी हमदोनों ही कारण कि हमदोनों ही चिन्तन प्रणाम और दर्शन करने वालों को अभीष्ट—उन लोगों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥१८॥

श्रीरामप्रिय वत्स ! हमहोनों से अधिक यानी विशिष्ट कोई नहीं है नवा हमदोनों के समान ही कोई है क्योंकी हमदोनों सभी प्राणि वर्गों के आत्मा के रूप में वेदादि शास्त्रों से निरूपित हैं और सभी के प्रेरक भी हमदोनों ही हैं ॥१९॥

मारुति ! इसपरिदृश्यमान सृष्टि के प्रलय काल में हमदोनों सूक्ष्म चित् नाम तथा रूप के विभाग में अयोग्य चित्—चेतन जीब वर्ग तथा अचित्-जड नाम रूप विभाग के अयोग्य प्रकृति वर्ग से नियत रूप से विशिष्ट युक्त—संश्लिष्ट रहते हैं, तथैव सृष्टि काल में हमदोनों ही स्थू चित् यानी नाम तथा रूप के विभाग में योग्य जीव वर्ग तथा स्थूल अचित् नाम-रूप के विभाग में योग्य जड वर्ग से बिशिष्ट ही रहते हैं उनसे रहित नहीं ॥२०॥

श्रीहनुमान ! हमदोनों ही सत्यकाम हैं तथा सत्य संकल्प भी हैं, और शरण लेने योग्य शरण में आये सभी जनों को

वेदवेद्यो जगद्योनिर्मन्निभो राघवो मतः
जगत्सृष्टयादयो लीला ममेव राघवस्य च ॥२२॥
मम लीलां विना रामलीला पूर्णा कदापि न ।
पूर्णा ममापिनो लीला श्रीरामलीलया विना ॥२३॥
सर्वोषामवताराणामावावेवावतारिणौ ।
भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ ॥२४॥

अभय देने वाले तथा जानने योग्य और मुक्ति के लिये भजनीय भी हमदोनों ही हैं अन्य कोई नहीं ॥२१॥

जैसे मैं वेदों से जानने योग्य हूं तथा जगत् की योनी संसार को उत्पन्न करने वाली हूं वैसेही श्रीराघवजी भी वेद शास्त्रों से वेद से प्रतिपाद्य और संसार को उत्पन्न करने वाले हैं ऐसा प्रतिपादित हैं। तथा जगत् की सृष्टि संरक्षण और संहार आदि लीलाएं मेरे समान ही श्रीराघवजी के भी हैं अतः दोनों में कोई अन्तर नहीं हमदोनों एक हैं ॥२२॥

रहस्य पिपासु हनुमन् ? मेरे लीला के विना एकाकी श्रीरामजी की लीला कभी भी पूर्णनहीं होती है तथा श्रीरामजी की लीला के विना एकाकी मेरी लीला भी कभी पूर्ण नहीं होती है ॥२३॥

पुत्र ! वेदशास्त्र प्रतिपादित जीतने भी अवतार-अंशावतार कलावतार आवेशावतार लीलावतार पूर्णावतार आदि सभी अवतारों के अवतारी हमदोनों ही हैं, अन्यत्र भी आगम शास्त्र यही कहता है–सर्वोषामवताराणामवतारिरघूत्तमः' तथा दूसरों को प्रकाशित करने वाले सूर्य चन्द्र अग्नि आदि को विभासित यानी प्रकासित करने वाले-उनके अन्दर में रहकर प्रकाश और चेतना का संचार करने वाले हमदोनों ही हैं वेद कहताहै 'यस्य भासा जगदिदं विभाति' ॥२४॥

त्रातुं धर्मं च भक्तांश्चाऽववतारो युगे युगे ।
आवयोर्नित्यसम्बन्धः शक्तिशक्तिमतोरिव ॥२५॥
मया विना वदन् रामं रामं विना वदंश्च माम् ।
वदत्यावां यतश्चावामभिन्नावेव सम्मतौ ॥२६॥
कुरुते नावतिप्रीतौ तथाप्युभौ वदन्नरः ।
द्विगुणं कीर्तनं यस्माज्जायते च तथाऽऽवयोः ॥२७॥

हनुमन ! शरणापन्न भक्तों तथा सनातन वैदिक धर्म की दुष्टों से रक्षा के लिये हम दोनों का आवश्यकतानुसार प्रत्येक युग में हम दोनों का अवतार होता है, शक्ति और शक्तिमान् के समान हम दोनों का नित्य सम्बन्ध है यानी लीला विभूति तथा नित्य विभूति दोनों ही स्थलों में हम दोनों अभिन्नरूप से ही रहते हैं कभी अलग नहीं होते हैं ॥२५॥

मारुति ! जो उपासक मेरे नामोच्चारण के विना केवल श्रीरामनामोच्चारण कर आराधना करता है या श्रीरामनामोच्चारण के विना मेरे नामोच्चारण कर उपासना करता है यानी 'श्रीराम' इस नाम मात्र का या 'श्रीसीता' इस नाम मात्र का आराधन करता है वह आराधक हम दोनों के नामों का यानी 'श्रीसीताराम' इसका ही उच्चारण या आराधन करता है क्योंकि हम दोनों श्रीसीता-राम अभिन्न हैं किसी भी रूप में अलग नहीं होते हैं श्रीमद्रामायण में श्रीसीताजी कहती हैं 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा' श्रीरामजी भी कहते हैं ' अनन्या च मया सीता भास्करेण प्रभा यथा' अतः तत्त्वतः दोनों एक हैं ॥२६॥

हे हनुमान्‌जी ! हम दोनों में से किसी एक के नाम ग्रहण से दोनोंका नाम ग्रहण हो जाता है तथापि उभय नाम-श्रीसीता राम का उच्चारण या उपासना करने वाला साधक हम दोनों

सर्वशक्तिस्वरूपाऽहं सर्वशक्तिर्हि राघवः ।
वर्णिता शास्त्रतत्त्वज्ञैरावयोः सर्वरूपता ॥२८॥
जगद्देहश्च सर्वज्ञो विभूरामः सदैव ही ।
जगद्देहा तथैवाऽहं सर्वज्ञा विभूतां गता ॥२९॥
ऐश्वर्येण सदा रामो मादृशश्चास्ति मारुते ! ।
माधुर्येऽपि सदा रामो मत्सादृश्यं जहाति न ॥३०॥
कोटि जन्मार्जितं पुण्यं ध्रुवं नश्यति स्तस्य हि ।
अज्ञत्वेनावयोर्निन्दां यः करोति नराधमः ॥३१॥

को अति प्रसन्न करलेता है क्योंकि 'श्रीसीता राम' इस प्रकार दोनों नामों का कीर्तन या उपासन करने से हम लोगों का द्विगुणित नामोच्चारण या उपासन हो जाता है ॥२७॥

वत्स ! जैसे मैं सर्वशक्ति स्वरूपा हूं वैसे ही श्रीराघवजी सर्वशक्ति स्वरूप हैं 'सीतारामौतन्मयावत्र पूज्यौ' इत्यादि वेदानुसन्धान से वेदादि सर्वशास्त्रों के मर्म को जानने वाले महर्षि श्रीवाल्मीकि श्रीव्यास प्रभृतियों ने हम दोनों को सर्वस्वरूप के रूप में सर्वत्र वर्णन किया है ॥२८॥

मारुति ! 'जगत्सर्वं शरीरं ते' इस महर्षि वचनानुसार जैसे श्रीरामचन्द्रजी जगत शरीर वाले हैं सदा एक रूप रहने वाले हैं विभू हैं और सर्वज्ञ हैं, उसी प्रकार मैं भी जगत् शरीर वाली सदा एक रूप से रहने वाली सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हूं और विभू हूं तथा सर्वज्ञ हूं ॥२९॥

हे मरुतनन्दन ! श्रीरामचन्द्रजी ऐश्वर्य में सर्वदा मेरे जैसे ही हैं और माधुर्य में भी सदा मेरे जैसे ही अतः दोनों में हम दोनों तुल्य हैं कुछ भी भेद नहीं हैं ॥३०॥

हनुमन ! जो नराधम अज्ञानतया भी हम दोनों की निन्दा करता है उसका कोटि जन्म से अर्जित पुण्य अवश्य ही नष्ट हो जाता है तथा असद्गति भी हो जाती है ॥३१॥

कुरुते त्वधमो मूढ़ो भेदबुद्धिं य आवयोः ।
यावच्चन्द्ररवी तस्य तावद्धि निरये स्थितिः ॥३२॥
ततोऽदां मम नाथस्य मन्त्रराजं षडक्षरम् ।
शिष्यस्य ते प्रियं कर्त्तुं गच्छ वत्स ! प्रदेहि तम् ॥३३॥
'मातर्धन्याऽसि' इत्येवं प्रणम्य प्राह मारुतिः ।
उपदिष्टं यतः स्वस्याः स्वरूपं राघवस्य च ॥३४॥
ददौ च तारकं गत्वा मारुतिर्विधये मुदा ।
गृहीत्वा विधिना मन्त्रं गुरुभक्तोऽभवद्विधिः ॥३५॥

मारुति ! जो अधम व्यक्ति हम दोनों में ये दो अलग-अलग हैं, इस प्रकार भेदबुद्धिरखता है उस मूढ व्यक्ति की जब तक चन्द्रमा और सूर्य की स्थिति संसार में रहेगी तब तक नरक में स्थिति होगी यानी श्रीसीतारामजी में भेद मानने वाले मनुष्य तब तक नरक में रहेगा जब तक चन्द्र और सूर्य संसार में रहेंगे ॥३२॥

वत्स ! पूर्व वर्णित प्रकार से शास्त्र मर्यादा तथा गूढ रहस्य है इस लिए मैंने मेरे प्रिय शिष्य तुम्हारा कल्याण करने के लिये मेरे आराध्यदेव सर्वेश्वर श्रीरामजी का षडक्षर मन्त्रराज श्री महामन्त्र को ही तुम्हें दिया है। अतः हनुमन् ! जाओ ब्रह्माजी के कल्याण के लिये तुम भी यथाशास्त्र ब्रह्माजी को श्रीमन्त्रराज प्रदान कर उनका उद्धार करो ॥३३॥

श्रीवशिष्ठजी ने कहा हे पराशरजी ! पूर्व में वर्णित प्रकार से श्रीसीताजी का उपदेश सुननेके बाद श्रीमारुतिजी ने श्रीसीताजी को सादरदण्डवत प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा हे माताजी ! आप धन्य हैं, करुणामयी आपने मुझे भी धन्य बना दिया है क्योंकि अपना तथा सर्वेश्वर श्रीराघवजी का तात्विक स्वरूप का उपदेश देकर मेरी शंका को आपने दूर कर दिया है ॥३४॥

हे पराशर ! श्रीसीताजी की आज्ञा प्राप्त कर प्रसन्नता पूर्वक जाकर श्रीमारुतिजी ने श्रीब्रह्माजी को सविधि तारक श्रीराममहामन्त्र

श्रीरामगुरुभक्तिभ्यां रामगुरुप्रसादतः ।
वैदिकार्थप्रकाशाद्धि ससर्ज पद्मजो जगत् ॥३६॥
हृष्टश्च भगवान् रामः श्रीसीता मारुतिस्तथा ।
ववन्दे श्रद्धया ब्रह्मा सद्गुरुं स्वस्य मारुतिम् ॥३७॥
सर्वेशः सर्वशक्तिश्च श्रीरामः सर्वकारणम् ।
तस्य मन्त्रप्रदं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥३८॥

की दीक्षा दी और श्रीगुरु महत्व का उपदेश भी दिया, श्रीहनुमान जी से शास्त्रविधि के अनुसार श्रीमन्त्रराज का ग्रहण कर यानी दीक्षा शिक्षा प्राप्त करने के बाद विधि-विधाता गुरुभक्त हुये तब शक्ति स्फुरित होने से सृष्टि कर सके ॥३५॥

पराशर ! अब ब्रह्माजी में श्रीराम-परब्रह्म तथा गुरुभक्ति ये दोनों जागरित हुई अतः श्रीरामजी का प्रसाद प्रसन्नता अनुग्रह तथा गुरुजी मन्त्रराज की दीक्षा-शिक्षा प्रदाता श्रीहनुमानजी की प्रसन्नता से वेदार्थों का प्रकाश हुआ अनन्तर ब्रह्माजी ने परेश श्रीरामचन्द्रजी के आज्ञानुसार यथापूर्व जगत् की सृष्टि की यानी जीवों के पूर्वभवोपार्जित कर्मानुसार जगत् की रचना की ॥३६॥

सृष्टि कार्य में समर्थ हो कर यथानुरूप सृष्टि करते ब्रह्माजी को देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भगवती श्रीसीताजी तथा मारुति जी अति प्रसन्न हुये। श्रीब्रह्माजी ने अपने सद्गुरुदेव श्रीहनुमानजी तथा श्रीसीतारामजी की पूर्ण श्रद्धा के साथ वन्दना की ॥३७॥

श्रीब्रह्माजी कहते हैं श्रीरामचन्द्रजी चराचर सभी के ईश हैं सर्वशक्ति सम्पन्न हैं और सभी के कारण हैं ऐसे जगन्नियन्ता श्रीरामजी के तारक षडक्षर महामन्त्र को मुझे देने वाले बुद्धि के समुद्र मरुतनन्दन श्रीहनुमानजी की मैं सादर वन्दना करता हूं ॥३८॥

श्रीरामब्रह्मनिष्ठं च ब्रह्मचर्यपरायणम् ।
सीताहर्षप्रदं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥३९॥
श्रीमद्रामप्रियायाः श्रीसीतायाः शिष्यतां गतम् ।
सीतारामप्रियं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥४०॥
भवाब्धितारकं सीतारामभक्त्या श्रितं जनम् ।
नित्यमुक्तमहं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥४१॥
दोषहीनं गुणाम्भोधिं दिव्यदेहं मनोजवम् ।
वेदतत्त्वविदं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥४२॥

परब्रह्म श्रीरामजी में अनन्य निष्ठा रखने वाले तथा ब्रह्मचर्य व्रत में परायण या वेद तत्त्व का उपदेश करने में सर्वदा संलग्न सर्वेश्वरी श्रीसीताजी श्रीरामजीका सन्देश सुनाकर अपार हर्ष प्रदान करने वाले अतुलित बल ऐश्वर्य तथा शौर्यादि गुण सम्पन्न बुद्धि के महासमुद्र श्रीमारुतिजी को सादर दण्डवत प्रणाम करता हूं ॥३९॥

षडैश्वर्य श्रीसम्पन्न श्रीरामजी की प्रिया श्रीसीताजी का शिष्यत्व स्वीकार कर यानी श्रीसीताजी से श्रीराममहामन्त्र प्राप्त कर मुझे उस महामन्त्र को प्रदान करने वाले श्रीसीतारामजी के अति प्रिय बुद्धि के खजाने श्रीमारुतिजी की मैं सदा वन्दना करता हूं ॥४०॥

शरण में आये हुए जनों को श्रीसीतारामजी की भक्ति के द्वारा भवसागर से पार उतारने वाले नित्यमुक्त बुद्धि के समुद्र श्रीहनुमानजी की मैं वन्दना करता हूं ॥४१॥

सभी प्रकार के दोषों से रहित और सम्पूर्ण गुणों के समुद्र तथा दिव्य शरीर वाले और मन के गति के समान वेग वाले तथा वेद तत्त्व को जानने वाले मति के वारिधि श्रीमारुतिजी को मैं वन्दन करता हूं ॥४२॥

प्रणम्यं पूजनीयं च स्तवनीयं बलाम्बुधिम् ।
शरण्यं सद्गुरु वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥४३॥
ऋद्धिसिद्धिप्रदं चाथ भक्तानां शत्रुनाशकम् ।
आधिव्याधिहरं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥४४॥
सर्वज्ञं रामभक्तं च दयाब्धिं ज्ञानभक्तिदम् ।
देवदेवं गुरुं वन्दे मारुतिं मतिवारिधिम् ॥४५॥
गुरावात्यन्तिकीं भक्तिं ब्रह्मणः संविलोक्य हि ।
रामः सीता हनूमांश्च परं हर्षमवाप्नुवन् ॥४६॥
तदेवं ब्रह्मणो रामाज्जगन्माता हि जानकी ।
लब्ध्वा श्रीराममन्त्रं च प्रददौ श्रीहनूमते ॥४७॥

सदा प्रणाम करने योग्य तथा नित्य पूजनीय और स्तवनीय प्रार्थना करने योग्य और बल के सागर शरण में आये जनों की संरक्षण करने वाले सद्गुरुदेव बुद्धि के खजानें श्रीमारुतिजी की सादर वन्दना करता हूं ॥४३॥

शरणापन्न जनों को ऋद्धि तथा सिद्धि को प्रदान करने वाले और भक्तजनों के शत्रुओं का नाश करने वाले तथा आधि-व्याधि और उपाधि का हरण करने वाले बुद्धि के सागर श्रीमारुति की आराधना करता हूं ॥४४॥

शरणापन्न जीवों को ज्ञान तथा भक्ति का प्रदान करने वाले दया के समुद्र और सर्वज्ञ तथा श्रीरामजीके परमभक्त देवताओं के भी देवता मतिवारिधि श्रीगुरुदेव मारुतिजी की वन्दना करता हूं ॥४५॥

श्रीवशिष्ठजी कहते हैं हे पराशर ! श्रीब्रह्माजी की श्रीगुरुदेव विषयक आत्यन्तिक भक्ति को देखकर श्रीरामजी श्रीसीता जी तथा श्रीहनुमानजी ने परम हर्ष का अनुभव किया ॥४६॥

हे पराशरजी ! पूर्वोक्त प्रकार से जगन्माता श्रीजानकीजी ने पर ब्रह्म श्रीरामजी से षडक्षर श्रीमहामन्त्र को प्राप्त कर श्रीहनुमानजी को प्रदान किया ॥४७॥

नित्यमुक्तो हनूमांस्तं ददौ चतुर्मुखाय हि ।
जगत्कर्तुस्ततश्चाहमप्राप्नवंश्च तारकम् ॥४८॥
मत्तः शक्तिकुमारस्त्वं विधिना लब्धवांश्चतम् ।
प्रोक्ता पराशरैषा ते राममन्त्रपरम्परा ॥४९॥
पराशरो गुरोः श्रुत्वा मन्त्रराजपरम्पराम् ।
परया श्रद्धया युक्तश्चानमत्तामनुत्तमाम् ॥५०॥

पराशर ! जिस तारक मन्त्रराज को सविधि श्रीहनुमानजी ने माता श्रीजानकीजी से प्राप्त किया था उसी को नित्यमुक्त श्री हनुमानजी ने चतुर्मुख ब्रह्माजी को सविधि प्रदान किया उन जगत्कर्ता ब्रह्माजी से उसी तारकमन्त्रराज को मैंने शास्त्रविधाना नुसार प्राप्त किया है ॥४८॥

जिस श्रीराममन्त्रराज को मैंने श्रीब्रह्माजी से प्राप्त किया उसी को मुझसे शक्ति के पुत्र तुमने शास्त्रीय विधान से प्राप्त किया है । हे पराशर ! जो तुमने श्रीराममन्त्रराज परम्परा के विषय में मुझसे पूछा था उस परम्परा को तुम्हें यथापूर्व वतला दी ॥४९॥

अपने गुरुदेव श्रीवशिष्ठजी से श्रीमन्त्रराज की परम्परा को सुनकर अत्यन्त उत्तम उस परम्परा तथा श्रीगुरुदेवजी को परम श्रद्धा के साथ श्रीपराशरजीने नमन किया ॥५०॥

आनन्दभाष्य सिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीतः

॥ प्रकाशः ॥

श्रीरामः शरणं मम

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

वशिष्ठसंहितास्थ श्रीहनुमत्कृतम्

❦ श्रीसीताऽष्टाक्षरस्तोत्रम् ❦

श्रीअङ्गदउवाच

लाङ्कायां हि प्रचण्डाग्नेर्यत्पाठादुरक्षितोऽसि तत् ।
श्रीसीताऽष्टाक्षरस्तोत्रं वक्तुमर्हसि मारुते ? ॥१॥

श्रीहनुमानुवाच

रामभक्त ! महाभाग ! सन्मते ! वालिनन्दन ?
श्रीसीताऽष्टाऽक्षरस्तोत्रं सर्वभीतिहरं शृणु ॥२॥

सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ❦ प्रकाश

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

सर्वेश्वरीश्रीसीताजी के अद्भुत शक्ति को जानने की इच्छा से श्रीअंगदजी श्रीहनुमानजी से पूछते हैं हे मारुतिजी ! लंका में धधकती प्रचण्ड अग्नि के मध्य में जिसका पाठ-जप-स्मरण से सुरक्षित रहे हो उस श्रीसीताजी के अष्टाक्षर स्तोत्र को आप हमें कहिये ॥१॥

श्रीअंगदजी के प्रश्न को सुनकर श्रीहनुमानजी ने कहा हे श्रीरामजी का भक्त ! सद्बुद्धि वाले महाभाग वालिनन्दन ! सम्पूर्ण भय को हरण करने वाला श्रीसीताजी के अष्टाक्षर स्तोत्र को कहता हूं सावधान से सुनो ॥२॥

श्रीमद्रामप्रियापुण्या श्रीमद्राम परायणा ।
श्रीमद्रामादभिन्ना च श्रीसीता शरणं मम ॥३॥
शरण्याश्रितरक्षित्री भास्करादेर्विभासिका ।
आकारत्रयशिक्षित्री श्रीसीता शरणं मम ॥४॥
शक्तिदा शक्तिहीनानां भक्तिदा भक्तिकामिनाम् ।
मुक्तिदा मुक्तिकामानां श्रीसीताशरणं मम ॥५॥
ब्रह्माण्युमारमाऽऽराध्या ब्रह्मेशादिसुरस्तुता ।
वेदवेद्या गुणाम्भोधिः श्रीसीताशरणं मम ॥६॥

जो श्रीरामचन्द्रजी की अति प्रिया हैं तथा पुण्य अति पवित्र रूपा हैं और षडैश्वर्यशाली श्रीरामपरायणा हैं तथा श्रीरामजी से अभिन्न स्वरूपा हैं उन श्रीसीताजी के शरण में हूं यानी शरणागतों की रक्षा करनेवाली श्रीसीताजी के शरण में हूं । वे मेरी रक्षा करें ॥३॥

शरण में जाने योग्य तथा शरण आये हुये जनों की रक्षा करने वाली और सूर्य चन्द्र अग्नि प्रभृति को प्रकाशित करने वाली तथा आकार त्रय यानी अनन्य शरणत्व अनन्यभोग्यत्व और अनन्य शेषत्व की शिक्षा देने वाली श्रीसीताजी के शरण में मैं हूं ॥४॥

शक्ति से रहितों को शक्ति देनेवाली तथा भक्ति की कामना वालों को भक्ति प्रदान करने वाली और मुक्ति की इच्छा वालों को सायुज्य मुक्ति देने वाली श्रीसीताजी के शरण में हूं ॥५॥

ब्रह्माणी उमा तथा रमा के आराधनीया और ब्रह्मा शंकर इन्द्र प्रभृति देवताओं से स्तुति की गई संस्तुत और वेदवेद्या यानी

शून्याहि निग्रहेणाथानुग्रहाब्धिः सुवत्सला ।
जननी सर्वलोकानां श्रीसीता शरणं मम ॥७॥
चिदचिद्भ्यां विशिष्टा च सच्चिदानन्दरूपिणी ।
कार्यकारणरूपा च श्रीसीता शरणं मम ॥८॥
विशोका दिव्यलोका च विभ्वी दिव्यविभूषणा ।
दिव्याम्बरा च दिव्याङ्गी श्रीसीता शरणं मम ॥९॥
भर्त्री च जगतः कर्त्री हर्त्री जनकनन्दिनी ।
जगद्धर्त्री जगद्योनिः श्रीसीता शरणं मम ॥१०॥

वेदों से जानने योग्य तथा सभी गुणों के अम्भोधि महासमुद्र स्वरूपा श्रीसीताजी के शरण में मैं हूं ॥६॥

निग्रह से रहित और अनुग्रह के समुद्र तथा वात्सल्य गुणों से युक्त सभी लोकों की जननी श्रीसीताजी के शरण में मैं हूं ॥७॥

चित्-चेतन जीववर्गों तथा अचित्-जड प्रकृति वर्गों से विशिष्ट युक्त और सत्-चित् तथा आनन्द स्वरूपिणी एवं कार्य तथा कारण स्वरूपा श्रीसीताजी का मैं शरण ग्रहण करता हूं ॥८॥

सभी प्रकार के शोकों से रहित श्रीसाकेत नामक दिव्य लोक वाली और सर्वव्यापक तथा दिव्यभूषणों से विभूषित एवं दिव्य वस्त्रों से युक्त दिव्यातिदिव्य अंग वाली श्रीसीताजी के शरण में हू ॥९॥

जगत-संसार को उत्पन्न करने वाली तथा पालन-पोषण करने वाली एवं अन्त में संहार करने वाली और संसार को धारण करने वाली जगत् की योनि-सर्वोत्पत्ति स्थान रूप जनक नन्दिनी श्रीसीताजी का मैं शरण लेता हूं ॥१०॥

सर्वकर्मसमाराध्या सर्वकर्मफलप्रदा ।
सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा श्रीसीता शरणं मम ॥११॥

नित्ययुक्तास्तुता स्तुत्या सेविताविमलादिभिः ।
अमोघपूजनस्तोत्रा श्रीसीता शरणं मम ॥१२॥

कल्पवल्ली हि दीनानां सर्वदारिद्र्यनाशिनी ।
भूमिजा शान्तिदा शान्ता श्रीसीता शरणं मम ॥१३॥

आपदां हारिणी चाथ कारिणी सर्वसम्पदाम् ।
भवाब्धितारिणी सेव्या श्रीसीता शरणं मम ॥१४॥

श्रुति स्मृति आदि सभी कर्मों से समाराधनीय एवं सभी प्रकार के कर्मों का फल प्रदान करने वाली सर्वज्ञ तथा सर्वेश्वरी श्रीसीताजी का आश्रय ग्रहण करता हूं ॥११॥

नित्यमुक्त जीवों से सदा स्तुति की गई स्तुति करने योग्य एवं विमला आदिओं से सदा सेवित अमोघ स्तोत्र तथा अमोघ पूजा वाली यानी जिसकी पूजा एवं पाठ कभी भी व्यर्थ नहीं जाता अवश्य ही भावनानुसार फल देता है ऐसी श्रीसीताजी के शरण में हूं ॥१२॥

दीन हीन एवं दुःखी जनों के लिए सभी प्रकार के दरिद्र-पना को नाश करदेने वाली कल्पलता स्वरूपा तथा परम शान्त रूपा एवं शरणापन्न जनों को शाश्वतिक शान्ति प्रदान करने वाली भूमि से उत्पन्न श्रीसीताजी के शरण में हूं ॥१३॥

शरणागत जनों के सभी प्रकार के आपतियों को हरण करने वाली एवं सभी प्रकार के सम्पत्तियों को प्रदान करने वाली सभी जनोंसे सेवनीय तथा संसार रूप सागर से जनों को पार उतार ने वाली श्रीसीताजी के शरश में हूं ॥१४॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

पाठाद्हनुमता प्रोक्तं नित्यमुक्तेन श्रद्धया ।
श्रीसीताऽष्टाऽक्षरस्तोत्रं भुक्ति मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१५॥

नित्यमुक्त श्रीहनुमानजी से कथित यह श्रीसीताष्टाक्षरस्तोत्र श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करने से पाठक मनुष्यों को अपनी-अपनी भावना के अनुसार ऐहिक भोग तथा पारलौकिक सायुज्यमुक्ति देने वाला है ।१५।।

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

श्रीसीता शरणं मम
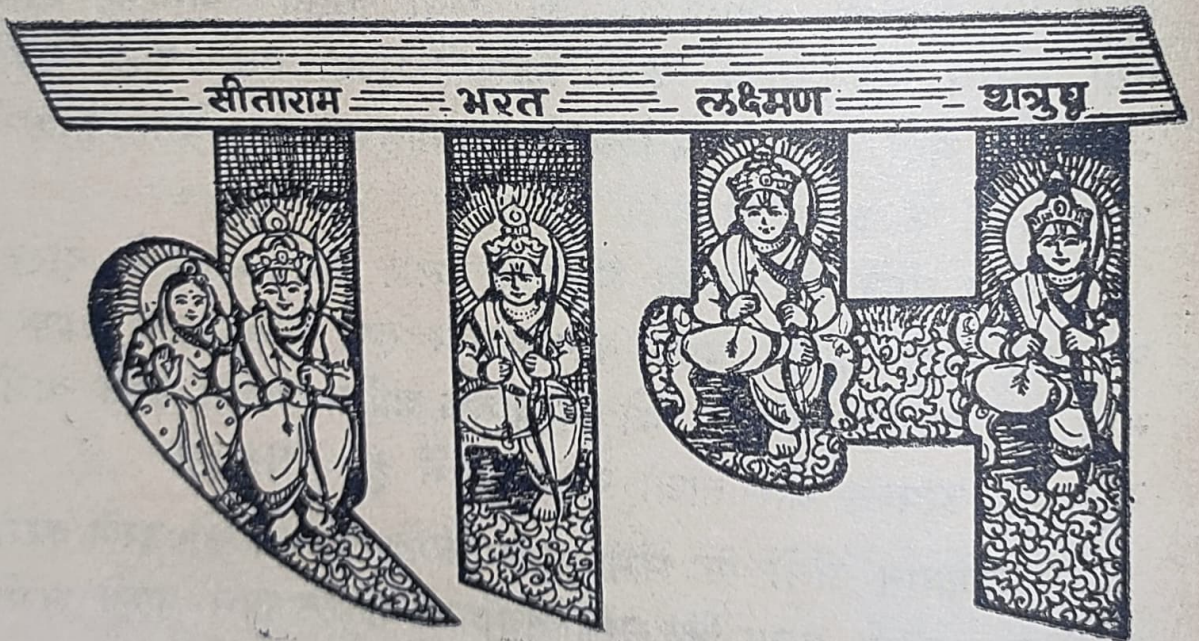
श्रीसीतारामाभ्यां नमः
वशिष्ठसंहितास्थ
ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठकृतम्

ॐ श्रीसीतारामनमस्कारस्तवाष्टकम् ॐ

नमो भगवते श्रीमद्रामायाभयदायिने ।
सर्ववेदान्तवेद्याय ससीताय नमो नमः ॥१॥
नमो भगवते श्रीमत्सीतेशाय परात्मने ।
बाह्यान्तः स्थाय सर्वेषां ससीताय नमो नमः ॥२॥

आनन्दभाष्यकाराय नमोनमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ॐ प्रकाश

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी अपने आराध्य देव सर्वेश्वर श्रीरामजी के स्तुति प्रसंग में कह रहे हैं—अपने शरण में आये हुए सभी जीवों को सर्वभूतों से अभय प्रदान करने वाले सर्व ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीरामजी को नमस्कार है,सभी वेदान्तोंसे वेद्य-जाने-जानेयोग्य अपनी अभिन्नरूपा श्रीसीताजी के साथ विराजमान श्रीरामचन्द्रजी को वार वार सादर नमस्कार है ॥१॥

षडैश्वर्यादि श्रीसम्पत् शाली तथा श्रीसीताजी के ईश स्वामी परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है, सभी भूत-जीव वर्गों के वाहर एवं अन्दर में सर्वतोभाव से व्याप्त होकर रहने

नमो भगवते श्रीमद्विष्णवे विश्वहेतवे ।
सर्वज्ञाय परेशाय ससीताय नमोनमः ॥३॥
नमो भगवते श्रीमद्रघुनाथाय शार्ङ्गिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय ससीताय नमोनमः ॥४॥
नमोभगवते श्रीमद्रामचन्द्राय चक्रिणे ।
कार्यकारणरूपाय ससीताय नमोनमः ॥५॥
नमो भगवते श्रीमद्वासुदेवाय विष्णवे ।
श्रेयोगुणसमुद्राय ससीताय नमोन ः ॥६॥

वाले सर्वव्यापक श्रीरामजी को उनकी अभिन्नाशक्ति श्रीसीताजी के साथ वार वार नमस्कार है ॥२॥

विश्व के कारण रूप ऐश्वर्यशाली श्रीविष्णु स्वरूप भगवान् श्री रामजी को नमस्कार है। सर्वज्ञ एवं परात्पर ईश-सभी के शास्ता रूप में श्रीसीताजी के साथ विराजमान श्रीरामचन्द्रजी को अनेक वार नमन है ॥३॥

शार्ङ्गधनुष को धारण करने वाले रघुकुल शिरोमणि भगवान् श्रीराम को नमस्कार है, सत् चित् एवं आनन्दस्वरूप तथा श्री सीताजी के साथ विराजमान श्रीरामजी को अनन्त वार नमन है ॥४॥

चक्र धारण करने वाले भगवान श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है, एवं श्रीसीताजी के साथ कार्य तथा कारण के रूप में सर्व जगह व्याप्त श्रीरामजी को अनन्त वार नमन है ॥५॥

कार्यकलापानुरूप श्रीवासुदेव एवं श्रीविष्णु स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् श्रीरामजी को नमस्कार है, तथा श्रेय आदि

नमोभगवते श्रीमद्रामभद्राय वेधसे ।
सर्वभूतशरण्याय ससीताय नमोनमः ॥७॥
नमोभगवते श्रीमद्राघवायामितौजसे ।
ब्रह्मणे परिपूर्णाय ससीताय नमोनमः ॥८॥

अनन्त गुणों के समुद्र श्रीसीताराम युगल स्वरूप को अनेक वार नमस्कार है ॥६॥

ब्रह्मा विष्णु शंकर आदि सभी वर्गों की सृष्टि करने वाले षड्गुण सम्पन्न श्रीरामभद्रजी को नमस्कार है, शरण में आये सभी भूतवर्गों को शरण में रखने वाले श्रीसीता सहित श्रीरामजी को बार बार नमस्कार है ॥७॥

अमित ओजस वाले भगवान् श्रीराघवजी को नमस्कार है, स्वाभिन्न स्वरूपा श्रीसीताजी के साथ स्थित परात्पर परिपूर्ण ब्रह्म श्रीरामजी को अनन्तवार नमन है ॥८॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

श्रीसीतारामचरणकमलेभ्यो नमो नमः

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः

श्रीवशिष्ठ संहितास्थं

॥ आश्रमधर्मनिरूपनम् ॥

श्रीभरद्वाजउवाच

नमस्ते ब्रह्मविच्छ्रेष्ठ ! नमस्ते ब्रह्मसूनवे ।
वर्णधर्माः श्रुतास्त्वत्तः श्रीवैष्णवोपकारकाः ॥१॥
न चानाश्रमिणा भाव्यं नरेणहितमिच्छता ।
अनाश्रमी यतश्चात्र नरः कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥२॥

नमोनमः श्रीरामाय

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जसुद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ॥ प्रकाश

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

महर्षि श्रीवशिष्ठजी से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र इन चारों वर्णों के धर्मादि सभी व्यवस्थाओं को सुनने के वाद आश्रम धर्म जानने की इच्छा से ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी से पुनः श्रीभरद्वाजजी प्रार्थना करते हैं–ब्रह्मतत्त्व जानने वालों में श्रेष्ठ हे वशिष्ठजी ! आप को मैं वन्दना करता हूं हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आपको वार वार नमन करता हूं। महर्षि प्रवर ! आपसे मैं श्री वैष्णवों के परम उपकारक वर्ण धर्मों को सुन लिया हूं, अव अनुग्रह कर आश्रम धर्मों का उपदेश करें ॥१॥ क्योंकि—

अपना हित चाहने वाले मनुष्यों को अनाश्रमी होकर नहीं

वैष्णवाश्रमधर्मास्तच्छ्रोतुमिच्छामि सम्प्रति ।
महर्षे ! त्वं समर्थोऽसि कृपया ब्रूहि तान् प्रभो ! ॥३॥
त्वत्तोऽधिको न कोऽप्यस्ति धर्मतत्त्वाभिधायकः ।
ततश्चाश्रमधर्मांश्च श्रोतुं यातस्त्वदन्तिकम् ॥४॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

भरद्वाज ! महाभाग ! क्षितौ धन्यस्त्वमेव हि ।
ईदृशी धर्मजिज्ञासा जाताते हृदये यतः ॥५॥
जिज्ञास्यं तेऽभिधास्यामः सावधानमनाः शृणु ।
शास्त्रमेव मतं प्राज्ञैर्धर्मतत्त्वप्रकाशकम् ॥६॥

रहना चाहिये, यदि कोई भी आश्रम धर्म स्वीकार किये विना रहे तो वह पापी होता है अतः कृच्छ्रचान्द्रायणव्रत करने पर ही इसपाप से वह शुद्ध होता है ॥२॥ इसलिये

हे महर्षे ! इस समय में मैं आपसे श्रीवैष्णवों के आश्रम धर्म के विषय में सुनने की इच्छा रखता हूं, इन धर्मो के उपदेश में आप समर्थ हैं अतः प्रभो ! मेरे ऊपर कृपा कर इन आश्रमधर्मों का उपदेश करें ॥३॥

मुनीश्वर ! आपके सिवाय धर्मतत्त्व का उपदेश करने वाला कोई भी नहीं है इस लिए आश्रमधर्मों की सुनने की इच्छा से आपके पास आया हूं अतः श्रीवैष्णवाश्रम भेद उप भेद आदि का उपदेश दें ॥४॥

श्रीभरद्वाजजी की आश्रमधर्म विषयक प्रार्थना सुनकर श्री वशिष्ठजी कहते हैं महाभग्यशाली भरद्वाजजी ! इस पृथिवी में आप ही धन्य हैं क्योंकि आपके हृदय में ही अति उत्तम ऐसे आश्रम धर्मों को जानने की इच्छा जगी ॥५॥

हे भरद्वाजजी ! आपसे जिज्ञासित आश्रम धर्म का वर्णन करता हूं सावधान मन यानी एकाग्रचित्त से सुनें । किसी भी

चत्वार आश्रमास्तत्र वैष्णवानां महात्मनाम् ।
संन्यासो वानप्रस्थश्च गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यकम् ॥७॥
भुञ्जानः सात्विकं भक्ष्यं विद्यार्थी गुरुसेवकः ।
ब्रह्मचारी द्विजस्तिष्ठेद् द्वादशाब्दं गुरोर्गृहे ॥८॥
अष्टमैथुनवर्ज्यात्म ब्रह्मचर्यव्रतेरतः ।
स्नात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा देवाभ्यर्चनकारकः ॥९॥
नम्रः शिखोपवीति च मेखलादण्डधारकः ।
होता स्वाध्यायकर्त्तासन् वसेद्विगुरुसन्निधौ ॥१०॥

आश्रम धर्म के प्रकाशक-बोधक एक मात्र शास्त्र है ऐसा प्राज्ञ-मननशील महर्षियों ने निश्चित किया है ॥६॥

मननशील श्रीवैष्णव महात्माओं के लिये शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ एवं सन्यास इस प्रकार चार आश्रम नियत किये हैं ॥७॥

जो द्विज सात्विक भोजन करता हुआ गुरु की सेवा पूर्वक विद्याध्ययन करते हुये बारह वर्ष तक गुरुकुल में निवास करता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है ॥८॥

वह ब्रह्मचर्य व्रत में रत होकर आठ प्रकार के मैथुनों से रहित होकर यानी 'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्चक्रियानिर्वृत्तिरेव च'। एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः। विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्' अर्थात् स्मरण करना कीर्तन-गान करना रमत करना तथा देखना एकान्त में बातें करना मन में संकल्प करना उद्योग करना और साक्षात् क्रिया का संपादन करना ये मैथुन के आठ अंग हैं ऐसा मनीषियों ने कहा है। इसीके ठीक विपरीत को आठ प्रकार का ब्रह्मचर्यपना है उसमें निरत रहकर स्नान शौच सन्ध्यादि कर्मों का सम्पादन कर देवता की पूजापाठ स्तुति करने वाला ब्रह्मचारी होता है ॥९॥

शिखा तथा यज्ञोपवीत धारण करने के साथ मेखला एवं दण्ड का धारक नम्र और नियतरूप से हवन एवं स्वाध्याय-

गायत्रादिविभेदैश्च चतुर्धा ब्रह्मचारिणः ।
स्थाता रात्रित्रयं यावल्लवणाभक्षकश्च यः ॥११॥
गायत्रीजपकर्ता स गायत्रः समुदीरितः ।
आवेदाध्ययनं ब्राह्मो ब्रह्मचर्यस्य पालकः ॥१२॥
वर्षं यावत् तथाभूतः प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ।
आजीवनं तथा भूतो नैष्ठिको हि गुरोः कुले ॥१३॥
आयुषश्चाचतुर्थांशं ब्रह्मचारीभवेद् द्विजः ।
आयुषश्चाद्वितीयार्धे कृतदारो गृहीभवेत् ॥१४॥
वार्त्तकादिविभेदैश्च गृहस्थाः षड्विधाः स्मृताः ।
सन्ध्यापञ्चमहायज्ञातिथ्यादिकर्मकारकाः ॥१५॥

वेदादिशास्त्रों का अध्ययन करते हुए गुरुकुल में निवासी हो वह ब्रह्मचारी कहाता है ॥१०॥

गायत्र ब्राह्म प्राजापत्य तथा नैष्ठिक भेद से चार प्रकार के ब्रह्मचारी होते हैं, तीन रात्रि तक ब्रह्मचर्य का पालन कर लवण का त्याग कर गायत्री का जप करते हुये जो रहताहै वह गायत्र कहलाता है। वेदाध्ययन के समाप्ति पर्यन्त जो ब्रह्मचर्य्य का पालन करता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है ॥११-१२॥

एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालक प्राजापत्य ब्रह्मचारी कहा गया है। आजीवन ब्रह्मचर्य पालन गुरुकुल में निवास करने वाला नैष्ठिकब्रह्मचारी कहा गया है ॥१३॥

द्विज को आयुष्य के चौथे भाग तक ब्रह्मचारी के रूप में रहना चाहिये। अनन्तर द्वितीय भाग प्रारंभ होने पर शास्त्रानुकूल विवाह करके गृहस्थ्य हो जाय ॥१४॥

वार्त्तक शालीन यायावर घोरसन्यासी उञ्छवृत्ती एवं अयाचित के भेदों से छ प्रकार के गृहस्थ कहे गये हैं ये सभी

वार्त्ताकः कथ्यते तत्र धार्मिकः संविचक्षणैः ।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यैर्जीवति यो गृहीनरः ॥१६॥
दानप्रतिग्रहाभ्यां च यजनाद् याजनात् तथा ।
पठनात् पाठनाच्चाथ शालीनो जीवति द्विजः ॥१७॥
याचित्वा सद्गृहस्थेभ्यो जीवन् यायावरो मतः ।
घोरसंन्यासिको भिक्षातश्चैकं निर्वहेद् दिनम् ॥१८॥
उञ्छवृत्तिर्जनः प्रोक्तः क्षेत्रोञ्छितान्नभक्षणात् ।
अयाचितोद्विजोयोहि दैवात् प्राप्तेन जीवति ॥१९॥

सन्ध्यावन्दन हवन तर्पण देवपूजा गोग्रास स्वाध्याय आदि पंच-महायज्ञों और अतिथियों का सत्कार करने वाले होते हैं ॥१५॥

उन छ प्रकार के गृहस्थों में से जो धार्मिक गृहस्थ नर कृषि खेती गोपालन वाणिज्य-व्यापार आदि से जीवन निर्वाह करता है उसे शास्त्र मर्यादा ज्ञाताओं ने वार्त्ताक कहा है ॥१६॥

जो द्विज दान देना दान लेना यज्ञ करना तथा यज्ञ कराना और पढना तथा पढाना आदि कर्मो से जीवन निर्वाह करता है वह शालीन कहलाता है ॥१७॥

सद्गृहस्थों के यहां से अपने उपयोग के अनुसार भीक्षा लेकर जीवन निर्वाह करने वाला द्विज यायावर माना जाता हैं। जो केवल दिन में एक समय में ही भिक्षा के सदन्न के सेवन से जीवन निर्वाह करता है वह घोर सन्यासी कहलाता है ॥१८॥

कृषकों के अनाज काट कर ले जाने के बाद खेतों में रहे हुये कणों को एकत्रितकर उसी से अपने जीवन निर्वाह करने वाले द्विज को उञ्छवृत्ति वाला कहते हैं। तथा जो दैवगत्या अनायास प्राप्त वस्तुओं से निर्वाह करता है वह द्विज अयाचित कहलाता है ॥१९॥

आयुषश्च द्वितीयाऽर्धेऽवशिष्टे वानप्रस्थता ।
वैखानसादिभेदैश्च वानप्रस्थाश्चतुर्विधाः ॥२०॥
वैखानसास्तु नीवाराद्यैरग्निहोत्रकारकाः ।
औदुम्बरास्तु जीवन्ति फलैश्चोदुम्बरादिभिः ॥२१॥
बालखिल्या मतास्ते–ये–जटावल्कलधारिणः ।
अर्जितमष्टभिर्मासैरन्नमश्नन्ति पावसे ॥२२॥
जीवन्ति फेनपाश्चाथशुष्कैः पर्णैः फलैस्तथा ।
तुरीयश्चाश्रमः प्रोक्तः प्राज्ञैः संन्यासनामकः ।२३॥
चतुर्थांऽशेऽवशिष्टेतु प्रव्रज्याऽभिहिताऽऽयुषः ।
यदा वोत्कटवैराग्यं प्रव्रज्येयं श्रुतौ तदा ।२४॥

मनुष्य के आयु के द्वितीयार्ध यानी एकावन वर्ष से पचहत्तर वर्ष तक का शेष भाग वानप्रस्थ कहलाता है वह वानप्रस्थ वैखानस औदुम्बर बालखिल्य एवं फेनपा भेदों से चार प्रकार का है ॥२०॥

नीवारादि हविष्यान्नों से अग्निहोत्र करने वाले वानप्रस्थ बैखानस कहे जाते हैं, एवं जो उदुम्बर फलादि से ही जीवन निर्वाह करते हैं वे औदुम्बर कहे जाते हैं ॥२१॥

आठ महिनों में अर्जित सात्विक अनाजों को पावस–वर्षा के चार महिनों में यथाविधि भगवदाराधनपूर्वक सेवन करनेवाले जटा वल्कल वस्त्रो को धारण करने वाले तपस्यापरायण जो हैं वे बालखिल्य कहलाते हैं ॥२२॥

जो शुष्क–सूखे पत्तो तथा कन्द, फल-मल आदिसे जीवन-निर्वाह करते हैं वे फेनप वानप्रस्थ कहे जाते हैं। चौथा आश्रम संन्यास इसनाम से प्राज्ञ लोगों ने निरूपण किया है ॥२३॥

आयु के चतुर्थांशभाग शेष रहने पर प्रव्रज्या संन्यास ग्रहण करलेना चाहिये ऐसा शास्त्रीय विधान है, 'यदहरेव विरजेत्

संन्यासिनोद्विधाज्ञेया वैष्णवा इतरे तथा ।
वैष्णवाश्चद्विधा तत्रादण्डिनश्च त्रिदण्डिनः ।२५॥
कौपीनधारकाः कण्ठे तुलसीधारिणस्तथा ।
शिखायज्ञोपवीतोर्ध्वपुण्ड्राणां धारकाः समे ।२६॥
उपास्तिपञ्चकाभिज्ञाश्चार्थपञ्चककोविदाः ।
रहस्यत्रयवेत्तारश्चाकारत्रयसंयुताः ॥२७॥

तदहरेव प्रव्रजेत्' इस श्रुति के विधानानुसार जिस दिन उत्कट वैराग्य हो जाय उसी दिन संन्यास ग्रहण कर लेने में कोई दोष नहीं यानी ब्रह्मचर्याश्रमसे गृहस्थ बने अनन्तर वानप्रस्थ बनकर ही संन्यासाश्रम में प्रवेश करे यह कोई अत्यावश्यक नियम नहीं उत्कट प्रबल वैराग्य होने पर ब्रह्मचर्याश्रम से सीधे संन्यासाश्रम या गृहस्थाश्रम से भी वानप्रस्थ हुये बिनाही संन्यासाश्रम में प्रवेश कर सकते हैं इस में शास्त्र मर्यादा का भंग नहीं है ।२४।

संन्यासी दो प्रकार के होते हैं एक वैष्णव संन्यासी तथा दूसरा शैव संन्यासी, वैष्णव संन्यासी भी दो प्रकार के होते हैं एक अदण्डी-यानी विनादण्ड के दूसरे त्रिदण्डी ।२५।

बिना दण्ड के हों या त्रिदण्डी सभी वैष्णव संन्यासी कण्ठ में तुलसी माला -कण्ठी कौपीन को धारण करने वाले होते हैं एवं दोनों ही प्रकार के संन्यासी शिखा यज्ञोपवीत तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करने वाले होते हैं यानी वैष्णव सन्यास में शिखा, यज्ञोपवीत का त्याग नहीं होता है उन्हे कौपीन तुलसी की कण्ठी शिखा सूत्र एवं ऊर्ध्वपुड्रों का नियमित रूप से धारण करना शास्त्रविधानतः अतिआवश्यक है इन सबों का त्याग से आरूढपतित हो जाता है जिसका प्रायश्चित्त नहीं है ।२६।

दोनों प्रकार के वैष्णव संन्यासी पांचप्रकार यानी अभिगमन, उपादान, अर्चन, स्वाध्याय एवं ध्यानरूप उपासना को

विरक्ताः सात्विकाधीरावेदान्तवेदिनस्तथा ।
गुरौ ब्रह्मणि मन्त्रे च धर्मे श्रद्धालवोऽपि च ॥२८॥
ब्रह्मचर्यपराश्चाथ सत्याहिंसापरायणाः ।
परोपकारकर्त्तारः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः ॥२९॥
श्रीसीतारामभक्ताश्च श्रीसीतारामकीर्त्तकाः ।
सीतारामप्रपन्नाश्च श्रीसीतारामचिन्तकाः ॥३०॥

जानने वाले तथा अर्थपञ्चक-प्राप्य, प्रापक, उपाय, फल एवं विरोधी तत्त्वों को अच्छी प्रकार से जानने वाले और रहस्य-त्रय यानी मन्त्रराजषडक्षर श्रीराममन्त्र, महामन्त्ररत्न (द्वयमन्त्र) तथा चरममन्त्र इन तीन रहस्यों को जानने वाले एवं आकार-त्रय यानी अनन्यशरणत्व, अनन्यभोग्यत्व तथा अनन्यशेषत्व के स्वरूप को यथार्थरूप से जानने वाले होते हैं ।२७।

उक्त दोनों संन्यासी विरक्त होते हैं सात्विक, धीर एवं वेदान्त तत्त्वों को जानने वाले होते हैं, और गुरु मन्त्रदाता गुरु-देव तथा सभी पूर्वाचार्य ब्रह्म-परब्रह्म श्रीरामजी तथा मन्त्र-श्रीरामसम्बन्धी मन्त्र एवं धर्म-सनातन श्रीवैष्णवधर्म में परम श्रद्धा रखने वाले होते हैं ।२८।

ये लोग ब्रह्मचर्य व्रतपालन में तत्पर एवं सत्य और अहिंसा परायण होते हैं तथा परोपकार करने में सदा तत्पर रहते हैं एवं पञ्चसंस्कारों-श्रीरामायुध, धनुर्बाण, तप्तमुद्रा, या शीतल मुद्रा से चिह्नित होना, ऊर्ध्वपुण्ड्र, भगवद्दास्य परकनाम, तुलसी माला-कण्ठी तथा श्रीराम महामन्त्रराज की दीक्षा से संस्कृत होते हैं ।२९।

ये दोनों प्रकार के संन्यासी श्रीसीतारामजी के भक्त एवं श्रीसीतारामनाम का सदाकीर्तन तथा जप करनेवाले और श्रीसीता-राम जी के ही प्रपन्न- शरणागत होते हैं एवं श्रीसीतारामतत्त्व के ही चिन्तक होते हैं ।३०।

श्रीसीतारामदासाश्च सीतारामपरायणाः ।
सीतारामस्वरूपज्ञाः श्रीसीतारामपूजकाः ॥३१॥
पञ्चकेशधराश्चाद्याः शिखिनो वा जटाधराः ।
काषायाम्बरश्वेतादिहरिन्नीलं विनाम्बराः ॥३२॥

ये दोनों प्रकार के वैष्णव संन्यासी श्रीसीताराम परायण तथा श्रीसीतारामजी के ही दास-शेष-भोग्य होते हैं एवं श्रीसीतारामजी के स्वरूप-तत्व को जानने वाले और श्रीसीतारामजीकी युगलदिव्य श्रीविग्रह की ही पूजा-आराधना करने वाले होते हैं अन्यों के नहीं ।३१।

अदण्डी तथा त्रिदण्डी दो प्रकार के वैष्णव संन्यासी में से पहले अदण्डी संन्यासी भद्ररूप शिखा वाले या पंचकेश धारण करने वाले अथवा जटाधारण करने वाले होते हैं, काषाय वस्त्र को धारण करने वाले होते हैं, इनमें से कितने ही हरे और नीले कपडों को छोड श्वेतपीत वस्त्रों के धारक भी होते हैं अर्थात् संन्यासाश्रम सेवी वैष्णवों के लिये काषायवस्त्र का ही विधान है अन्य श्वेतादि का नहीं, श्वेतादि वस्त्र धारण प्रमाद एवं शास्त्रमर्यादा विरुद्ध है, हरे, नीले, चितकबरे, कबूरे तो सर्वथा निषिद्ध है, शास्त्रकारोंने विरक्त श्रीवैष्णवों के वस्त्र एवं आचार के विषय में स्पष्टनिर्देश किया है श्रीवाल्मीकि संहिता कहती है—

'काषायं ब्रह्मसूत्रं च त्रिदण्डं धारयन्यतिः ।
पुनानः स्वोपदेशेन लोकांश्च विचरेद्भुवि ॥
काषायवासाः सततंध्यानयोगपरायणः ।
ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद् देवालयेऽपि वा ॥
मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथालौल्यमेव च ।
दिवास्वापं च यानं च यतीनां पातकानिषट् ॥"

कथा कीर्त्तनस्वाध्यायहोमार्चादिविधायका: ।
आलस्यरहिता धातुकाष्ठारदिपात्रधारका: ॥३३॥

अर्थात् विरक्त श्रीवैष्णव काषाय (भगवा) वस्त्र यज्ञोपवीत त्रिदण्डधारण कर ध्यानयोग परायण होकर ग्राम से बाहर वृक्ष के नीचे या देवालय में निवास करे एवं सदा सदुपदेश परायण रहे। विरक्त श्रीवैष्णवों को चारपाई पर सोना शुक्लवस्त्र धारण- करना स्त्री की कथा चंचलता दिन में सोना बैलगाडी पर सवारी नहीं करना ये सब पातकजनक हैं। तथैव पद्मपुराण के आदि खण्ड में लिखा है-

'मुण्डीशिखीवाथ भवेत् त्रिदण्डीनिष्परिग्रह:
काषायवासा: सततंध्यानयोगपरायण: ॥

यज्ञोपवीतीशान्तात्मा कुशपाणि: समाहित: ।
धौतकाषायवसनोभस्माच्छन्नतनूरुह: ॥"

अर्थात् विरक्त श्रीवैष्णवसन्यासी काषाय वस्त्र त्रिदण्ड धारण करे भद्र या पंचकेश रखे सदाध्यान एवं सदुपदेश परायण हो, उसे यज्ञोपवीत कंठी तिलक आदि सदा धारण करना चाहिये एवं भस्म का उपयोग नकरता हुआ समाहित मनसा भगवत्परायण होकर समय यापन करे। यह संक्षिप्त स्वरूप है विस्तृत अन्यत्र देखें ।३२।

अदण्डी वैष्णव संन्यासी सर्वथा आलस्य से रहित होकर श्रीराम कथा, कीर्तन, स्वाध्याय, हवन, पूजा, स्तुति, पाठ आदि करने वाले एवं धातु लकड़ी या बाँस के पात्रों का धारण करने वाले होते हैं ॥३३॥

स्नानसन्ध्यादिकर्त्तारो मन्त्रराजस्य जापकाः ।
केचित्तु भस्मनासार्धमूर्ध्वपुण्ड्रजटाधराः ॥३४॥
राममन्त्रतपोभ्यां च रामाराधनतत्पराः ।
सहदण्डत्रयेणान्त्या काषायाम्बरधारकाः ॥३५॥
सीतारामौस्मरन्तश्च काष्ठादिपात्रशालिनः ।
भ्रमन्तः पुण्यतीर्थेषु सर्वथा दम्भवर्जिता ॥३६॥

ये स्नान-शौच सन्ध्या-वन्दन एवं मन्त्रराज के जप करने वाले होते हैं, उनमें से कितने ही ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और जटा के साथ भस्म धारण करने वाले भी होते हैं ॥३४॥

बिना त्रिदण्ड के वैष्णव संन्यासी श्रीराममन्त्र का जप अनुष्ठान और तपश्चर्या के द्वारा श्रीरामजी की आराधना में सदा तत्पर रहते हैं ।

पूर्ववर्णित भेदानुसार अन्त्य यानी दूसरे दण्डीवैष्णव संन्यासी जो हैं वे त्रिदण्ड के साथ काषायवस्त्र को धारण करते हैं अर्थात् त्रिदण्डी को श्वेतादि वस्त्र धारण सर्वथा निषेध है ॥३५॥

त्रिदण्डी वैष्णव संन्यासी अलाबुपात्र, काष्ठपात्र, वांस का पात्र एवं मृन्मयपात्र को धारण करने वाले होते हैं । यानी धातु पात्र का उपयोग निषेध है । अलाबुपात्र का तात्पर्य लता समुद्भूत पात्र से हैं अतः दरीयायीलता का फल नारियली चिप्पी एवं पृथिवी लता का फल तुमडी दोनों ही समान रूप से ग्राह्य हैं, मनु का भी ऐसाही विधान है "अलाबुदारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा। एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवो ऽब्रवीत्' ६-५४/श्री सीतारामजी का अखण्डस्मरण करते हुये सर्वथा दम्भ से रहित होकर सभी पुण्य तीर्थों में एवं गाँवों-गाँवों में घूमते हुये सद्धर्म का प्रचार करते हैं ॥३६॥

ईशं धर्मं न निन्दन्ति स्त्रियासार्धं वसन्ति न ।
न वित्तलोलुपा भूत्वा गच्छन्ति धनिनोऽन्तिकम् ॥३७॥
यतयः सेवनानर्हा गृहस्थवेषधारकाः ।
सेव्याविरक्तशीलास्ते विरक्तवेषशालिनः ॥३८॥
संन्यासिनो गृहस्थत्वे त्वारूढपतनं भवेत् ।
आरूढपतितस्याऽत्र प्रायश्चित्तं नविद्यते ॥३९॥
इह भ्रष्टाधिकारोहि गर्हितो मानवर्जितः ।
मृतोहि नरकं गच्छत्यारूढपतितो यतिः ॥४०॥

वैष्णव सन्यासी ईश्वर एवं उससे प्रवर्तित धर्म की निन्दा कभी भी नहीं करते हैं तथा स्त्रियों के साथ निवास भी नहीं करते हैं और वित्त में लालायित होकर धनी व्यक्ति के पास याचना करने भी कदापि नहीं जाते हैं ॥३७॥

गृहस्थ वेष का धारण करने वाले यति संन्यासी सेवा-पूजा सत्कार करने योग्य नहीं हैं क्योंकि वे अपने आचार से च्युत हैं, विरक्त वेष में रहने वाले विरक्तोचित व्यवहार वाले सेव्य-पूज्य-नीय हैं ॥३८॥

सन्यासियों का गृहस्थ वेष धारण या विवाह कर लेने से पतन हो जाता है ऐसों को शास्त्रकारों ने आरूढ पतित कहा है, आरूढ पतितों को पवित्र करने के लिये शास्त्र में कोई प्राय-श्चित नहीं है ॥३९॥

आरूढ़ पतित संन्यासी इसलोकमें सभी अधिकारों से रहित हो जाता है एवं निन्दित और मान-प्रतिष्ठा से रहित हो जाता है. इतना हीं नहीं मरने के बाद अवश्य ही नरक में चला जाता है ॥४०॥

ब्रह्मचर्यव्रतंरक्ष्यं　गृहस्थान्याश्रमत्रये　।
तदभावे हि　तत्स्थानामारूढपतनं भवेत्　॥४१॥
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेभ्य-　आरूढपतिताश्च ये　।
स्वाधिकाराद्बहिष्कार्या नृपैश्च धार्मिकैश्च ते ॥४२॥

गृहस्थ आश्रम से अन्य तीनों आश्रमों में सावधानीपूर्वक नियतरूप से ब्रह्मचर्यव्रत का रक्षण-पालन करना चाहिये व्रत का पालन न हो तो उस-उस आश्रम से वह पतित हो जाता है अतः वे आरूढ पतित कहलायेंगे जिनका कि शास्त्र मर्यादानुसार संसार में कोई मर्यादा नहीं ॥४१॥

जो आश्रम धर्म से भ्रष्टहोकर आरूढपतित हो गये हैं उन्हें धार्मिक व्यक्तियों के परिषदों के संयुक्तता में नृपों द्वारा उनके अधिकार से वहिष्कार कर देना चाहिये ॥४२॥

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

श्रीरामःशरणं मम

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीवशिष्ठसंहितास्थं

ॐ परात्पर श्रीरामधाममवर्णनम् ॐ

भरतद्वाज उवाच

वेदवेदान्तसारज्ञ ! विरञ्चिप्रभवोत्तम ! ।
भवता यत्परिज्ञातं तन्न जानन्ति केचन ॥१॥

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

ॐ प्रणीत ॐ प्रकाशः ॐ

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के नाम रूप लीला एवं धाम श्री-रामजी से परस्पर अभिन्न एवं नित्य शुद्ध तथा दिव्य हैं ऐसी शास्त्रमर्यादा है अतः श्रीरामचन्द्र जी के परात्पर दिव्यधाम श्री साकेत के विषय में विशेष जानकारी के लिये श्रीभरद्वाज महर्षि ब्रह्मर्षि श्रीवशिष्ठजी से सविनय पूछ रहे हैं-हे ब्रह्माजी के मानस पुत्रों में श्रेष्ठ ? वेद एवं वेदान्त के सारतत्त्व को जानने वाले हे ब्रह्मर्षिप्रवर ? आपने जिस सारतत्त्व को जाना या अनुभव कर रखा है उसको कोई भी नहीं जानते हैं ॥१॥

अतस्त्वां परिपृच्छामि हरेर्धाम्नांहि कारणम् ।
किञ्च तत्परमंधाम माधुर्यैश्वर्यभूषणम् ॥२॥
यत्र सर्वावताराणामादिकारणविग्रहः ।
क्रीडति कृपया मे त्वं तत्त्वतः कथय प्रभो ? ॥३॥

श्रीवशिष्ठ उवाच

साधु पृष्टं त्वया तात ? गुह्याद्गुह्यतमं महत् ।
सारात् सारतमं वेदसिद्धान्तं प्रवदामि ते ॥४॥
श्रूयतां सावधानेन रहस्यमतिदुर्लभम् ।
रामभक्तंविनाक्कापि नवक्तव्यंत्वयाऽनघ ? ॥५॥

अतः हे ब्रह्मर्षिवर ? हरि, श्रीरामजी के परमधाम के विषय में उसे तत्त्वतः जानने के लिये आपसे निवेदन कर रहा हूं, उस अनन्त माधुर्य एवं ऐश्वर्यों के विभूषण परमधाम का स्वरूप क्या है कैसे प्राप्त किया जासकता है यह कृपा कर बतावें ॥२॥

सर्व समर्थशाली ऋषिवर ? जिस परमधाम में सम्पूर्ण अवतारों के आदि कारण दिव्यविग्रह श्रीरामजी सदा क्रीडा-रमण किया करते हैं कृपया उस दिव्यधाम के स्वरूप को तत्त्वत यथार्थ रूप से आप मुझे कहें ॥३॥

पर्वोक्त प्रकार से श्रीभरतद्वाजजी की श्रीरामधाम विषयक प्रार्थना को सुनकर श्री वशिष्ठ जी कहते हैं तात ? हे भरद्वाज जी ? आपने बहुत बड़ा गुह्यों में अतिगुह्य यानी अत्यन्त रहस्यमय परमगोपनीय प्रश्न पूछा है अतः आप साधुवाद के पात्र हैं क्योंकि जो आपने पूछा है वह वेद के सार से भी सारतम—परमनिचोड़ अन्तिम सिद्धान्त है उसे आपको बताता हूँ ॥४॥

हे अनघ ? विशुद्धात्मा भरद्वाजजी इस अतिदुर्लभ श्रीरामधाम सम्बन्धी रहस्य को सावधान होकर सुने मैं आपको बताता हूं पर

सर्वेभ्यश्चापिलोकेभ्यश्चोर्ध्वं प्रकृतिमण्डलात् ।
विरजायाः परेपारे वैकुठं यत्परंपदम् ॥६॥
तस्मादुपरिगोलोकः सच्चिदिन्द्रियगोचरः ।
तन्मध्येरामधामास्ति साकेताख्यं परात्परम् ॥७॥
श्रीमद्वृन्दावनादीनि तद्धामावरणेष्वपि ।
सर्वेषामवताराणां सन्ति धामान्यनेकशः ॥८॥
केवलैश्वर्यमुख्यानि धामान्येतानि सन्मते ! ।
ऐश्वर्योपासकाभक्ताध्यायन्ति प्राप्नुवन्ति च ॥९॥

आप इसे श्रीरामभक्त व्यक्ति को ही कहें अन्यों को कहीं एवं कभी भी न कहें ॥५॥

भरद्वाज जी ? एक पादश्वभूतिस्थ प्रकृति मण्डल से ऊपर देवलोक है एवं अन्य सभी देवलोकों से भी ऊपर श्री विरजा नदी के उस पार में श्रीवैकुण्ठ नामक प्रसिद्ध परमपद है ॥६॥

सत् एवं चित् स्वरूप इन्द्रियों यानी दिव्यदृष्टि से ही देखा जासके ऐसा श्रीगोलोकधाम उस श्रीवैकुण्ठधाम से ऊपर है, उसी श्रीगोलोक के मध्य बीच में श्रीसाकेत इस नाम से प्रसिद्ध परात्पर श्रीरामचन्द्रजी का दिव्यधाम है ॥७॥

उस श्रीसाकेतधाम के बाह्य आवरणों में श्रीवृन्दावन प्रभृति सभी श्रीरामजी के अन्य अवतारों के अनेक धाम विद्यमान हैं ॥८॥

हे सद्बुद्धि वाले भरद्वाज ? श्रीसाकेतधाम के आवरण में स्थित सभी लोक मात्र ऐश्वर्य प्रधानक हैं. ऐश्वर्य की उपासना करने वाले भक्तगण उनका ध्यान साधना करते हैं एवं साधनानुसार उनको उन लोकों को प्राप्त भी करते हैं ॥९॥

एभ्यः परतमं धाम श्रीरामस्य सनातनम् ।
पृथिव्यां भारते वर्षे ह्ययोध्याख्यंसुदुर्लभम् ॥१०॥
अखण्डसच्चिदानन्दसन्दोहं परमाद्भुतम् ।
वाङ्मनोगोचरातीतं त्रिषु कालेषु निश्चितम् ॥११॥
भूतलेऽपि च यद्धाम तथापि प्रकृतेर्गुणाः ।
संस्पृशन्ति नतज्जातु जलानि कमलं यथा ॥१२॥
कालः कर्मस्वभावश्च मायिकः प्रलयस्तथा ।
ऊर्मयः षड्विकाराश्च न यत्र प्रभवन्ति हि ॥१३॥

ऐश्वर्य युक्त इन श्रीवृन्दावनादि धामों से अतिशयित पर सनातन श्रीरामजी का दिव्यधाम श्रीसाकेत है वहीं सामान्य जनों से दुर्लभ श्रीअयोध्या इसनाम से पृथिवी एकपादविभूति स्थ इस भारत वर्ष में भी विराजमान है ॥१०॥

वह दिव्यधाम श्रीअयोध्या अखण्डैकरस सत् चित् एवं आनन्दस्वरूप तथा परम अद्भुत है, और सत्साधना हीन जनों से तीनों कालों में भी वाणी तथा मन से भी प्राप्त नही किया जा सकता है ॥११॥

यह श्रीअयोध्याधाम यद्यपि एक पाद विभूति, भूतल में है तथापि कभी भी एवं किसी भी प्रकार से प्रकृति के सामान्य गुण उसे स्पर्श भी नहीं करते हैं जैसे जल में स्थित कमलों को जल स्पर्श नहीं करता है ॥१२॥

और इस श्रीअयोध्याधाम में काल, कर्म, स्वभाव एवं मायिक प्रलय तथा छ प्रकार के ऊर्मिसम्भूत विकार कभी भी अपने प्रभाव नहीं जमा पाते हैं। जरा, मरण, क्षुधा, तृषा, शोक एवं मोह ये ही छ ऊर्मियाँ हैं। उनमें से जरा एवं मरण देह धर्म, क्षुधा तथा तृषा. प्राण धर्म. एवं शोक और मोह या सुख

यदंशेन प्रकाशेते विभूती द्वे च सर्वदा ।
अधश्चोर्ध्वमनन्ते च नित्ये च परमाद्भुते ॥१४॥
विभाति सरयूर्यत्र पश्चिमादित्रिदिक्षु च ।
विरजाद्याः सरिच्छ्रेष्टाः प्रकाशन्ते यदंशतः ॥१५॥
परान्नारायणाच्चापि कृष्णात्परतरादपि ।
यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिः स्वराट् ॥१६॥
यस्यानन्तावराश्च कला अंशाविभूतयः ।
आवेशाविष्णुब्रह्मेशाः परब्रह्मस्वरूपभाः ॥१७॥

एवं दुःख मन के धर्म के रूप में दार्शनिको ने माना है ॥१३॥

परम अद्भुत नित्य एवं अनन्त श्रीरामजी की लीलाविभूति एवं नित्यविभूति ये दो नीचे एकपादविभूति और ऊपर त्रिपाद-विभूति में जिसके अंश से सर्वदा प्रकाशित होते हैं यही दिव्य धाम श्रीरामजी की नगरी अयोध्या है ॥१४॥

उस अयोध्या नगरी के पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व तीन दिशाओं में श्रीसरयूनदी सुशोभित है, जिसके अंश से विरजा गंगा प्रभृति श्रेष्ठ नदियाँ प्रकाशित होती है ॥१५॥

उस दिव्यधाम श्रीअयोध्या में अन्य देवापेक्षया पर-रूप से निरूपित श्रीनारायणजी से परस्वरूपतया निरूपित श्री कृष्णजी हैं उनसे भी परात्पररूप से सर्वशास्त्रों से निरूपित षडैश्वर्यशाली सर्वतोभाव से देदिप्यमान श्रीदशरथनन्दन श्रीरामजी नित्य विराजमान रहते हैं ॥१६॥

उन्हीं परधाम अयोध्याविहारी श्रीरामचन्द्रजी के विभूतियां एवं आवेशावतार कलावतार तथा अंशावतार प्रभृति अनेक हैं तथा परब्रह्म के स्वरूप ऐश्वर्यादि से सादृश्यापन्न श्रीविष्णु, ब्रह्मा एवं ईश-शंकरादी हैं ॥१७॥

स एव सच्चिदानन्दो विभूतिद्वयनायकः ।
वात्सल्याद्यद्भुतानन्तकल्याणगुणवारिधिः ॥१८॥
राजेन्द्रमुकुटप्रोद्यद्रत्ननीराजिताङ्घ्रिणा ।
पित्रादशरथेनैव वात्सल्यामृतसिन्धुना ॥१९॥
कौशल्याप्रमुखाभिश्चमातृभिर्भ्रातृभिस्त्रिभिः ।
स्वदारसीतया चाथ दासीभिश्चालिभिस्तथा ॥२०॥
सखिभिः समरूपैश्च दासैश्चामितविक्रमैः ।
मत्प्रमुखमुनीन्द्रैश्च सुमन्त्राद्यैश्चमन्त्रिभिः ॥२१॥
परिवारैरनेकैश्च सच्चिदानन्दमूर्तिभिः ।
भोगैश्चविविधैर्दिव्यैर्भोगोपकरणैस्तथा ॥२२॥

वे ही सत्, चित् एवं आनन्दरूप तथा नित्यविभूति और लीलाविभूति दोनों के अधिपति तथा वात्सल्य आदि अद्‌भुत और अनन्त कल्याण गुणों के वारिधि. समुद्र हैं ॥१८॥

अनेक श्रेष्ठ राजाओं के मुकुट में लगे दिव्यरत्नों के प्रभा से नीराजित श्रीचरणकमलों से सुशोभित और वात्सल्य रूप अमृत के समुद्र पिता श्रीदशरथजी के साथ उस अयोध्या में श्रीरामजी सदा विराजमान रहते हैं ॥१९॥

श्रीकौशल्या, श्रीकैकेयी और श्रीसुमित्रा माता एवं श्रीभरत, श्रीलक्ष्मण तथा श्रीशत्रुघ्न इन तीन भाई एवं दासी और सखियों युक्त अपने से अनन्य रूपा श्रीसीताजी के साथ-॥२०॥

एवं समानरूप वालों सखाओं अमित पराक्रम वाले श्री हनुमत्प्रभृति दासों और सुमन्त्रप्रभृति मन्त्रियों तथा जिनमें मैं प्रधान हूं ऐसे अनेक मुनीन्द्रों के साथ-॥२१॥

और सत, चित् एवं आनन्द मूर्ति वाले अनेक परिवारों तथा विविध प्रकारके दिव्य भोगों और भोग के उपकरण-साधनों

साधं वसति यत्रैव स्वतन्त्रः क्रीडते सदा ।
क्षणं हित्वा न तद्धाम क्वचिद्याति स्वयंप्रभुः ॥२३॥
तन्माधुर्यमयं नित्यमैश्वर्यान्तर्गतं ध्रुवम् ।
रामस्यातिप्रियं धाम नास्त्यनेन समंक्वचित् ॥२४॥
अतोऽयोध्यारसज्ञा ये सर्वदा पर्युपासते ।
प्राकृतैश्चक्षुभिर्नैव दृश्यते साकथञ्चन ॥२५॥
देहत्रयविनिर्मुक्ता रामभक्तिप्रभावतः ।
तुरीयसच्चिदानन्दरूपाः पश्यन्ति तां पुरीम् ॥२६॥

जो कभी क्षीण या मलीन नहीं होते हैं के साथ-॥२२॥

ऊपर वर्णित सभी जनों के साथ उस दिव्यधाम श्री अयोध्या में सर्वेश श्रीरामजी सदा निवास करते हैं एवं परम स्वतन्त्रतया सदा क्रीडा किया करते हैं, सर्वसमर्थ सर्वकारणभूत श्रीरामचन्द्रजी उस धाम को छोड़कर क्षण के लिये भी कहीं नहीं जाते हैं ॥२३॥

वह श्रीअयोध्या माधुर्यादिगुणों से ओतप्रोत है, नित्य है अनन्त ऐश्वर्यों से युक्त एवं ध्रुव अचल है, यह धाम श्रीरामचन्द्रजी को अतिप्रिय है, इस के समान कहीं और कोई भी नहीं है ॥२४॥

इसलिए श्रीअयोध्या के महत्त्व को जानने वाले साधक सदा इसका सेवन करते हैं, वह धाम प्राकृत, सामान्य चक्षु से किसी भी प्रकार से नहीं दिखलाई देता है, दिव्य दृष्टि से ही देखा जासकता है ॥२५॥

उस दिव्यपुरी को देहत्रय यानी स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों से विनिर्मुक्त हुये सर्वेश्वर श्रीरामजी के अनन्य भक्ति के प्रभाव से आविर्भूतगुणाष्टक दिव्य शरीर अर्थात् अपहतपाप्मा,

अथ श्रीरामचन्द्रस्य यद्धाम प्रकृतेःपरम् ।
सच्चिद्घनपरानन्दं नित्यं साकेतसंज्ञकम् ॥२७॥
यदंशप्रभवा लोका वैकुण्ठाद्याः सनातनाः ।
वक्ष्याम्यहं मुनिश्रेष्ठ ! तस्यावरणसप्तकम् ॥२८॥
एकैकस्यां दिशि श्रीमान् दशयोजनसंमितः ।
अयोध्याया बहिर्देशः स वै गोलोकसंज्ञकः ॥२९॥
महाशम्भुर्महाब्रह्मा महेन्द्रो वरुणस्तथा ।
धनदोधर्मराजश्च महान्तश्चदिगीश्वराः ॥३०॥

विजर, विमृत्यु विशोक, विजिघत्स, अपिपास, सत्यकाम, एवं सत्य संकल्प वाले चतुर्थस्वरूप सच्चिदानन्दमय हो जाते हैं वे ही साधक देख सकते हैं श्रीरामकृपा के विना नहीं ॥२६॥

श्रीभरद्वाजजी अब मैं प्रकृति से परमें स्थित सत्स्वरूप चित्तस्वरूप, घनस्वरूप परस्वरूप, आनन्दस्वरूप, एवं नित्यस्वरूप श्रीसाकेत नाम वाला श्रीरामचन्द्रजी का जो दिव्यातिदिव्यधाम है उसका वर्णन करता हूं सावधानतया सूनें ॥२७॥

मुनिश्रेष्ठ ? वैकुण्ठ, गोलोक आदि सनातनलोक जिस साकेतलोक के अंश से समुत्पन्न हैं उस श्रीसाकेत लोक के सात आवरणों को कहता हूं उसे सुनें ॥२८॥

भरद्वाज ? अयोध्याजी का बाहरी प्रदेश जो प्रत्येक दिशाओं में दश-दश योजन प्रमाण का घेराव है वह सर्वैश्वर्यशाली गोलोक नामक दिव्यधाम हैं ॥२९॥

महाशम्भु, महाब्रह्मा, महेन्द्र तथा वरुण, कुवेर एवं धर्मराज तथान्य बडे-बडे दिक्पालगण तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवप्रभृति सभी देव श्रीरामजी के अंश से ही समुत्पन्न हैं, वे सभी देव

एतदंशसमुद्भूता देवा ब्रह्मशिवादयः ।
यथाधिकारं ते सर्वे स्वस्वलोकेषु संस्थिताः ॥३१॥
निधयो नवधा नित्या दशाष्टौ सिद्धयस्तथा ।
त्रयस्त्रिंशत् तथादेवागन्धर्वाश्चाप्सरोगणाः ॥३२॥
अन्ये च विविधा देवा नित्याः सर्वे द्विजोत्तम ।
सायुधाः सगणाः श्रीमद्रामभक्तिपरायणाः ॥३३॥
सप्तर्षयोमुनीन्द्राश्च नारदसनकादयः ।
प्रथमावरणेनित्यं साकेतस्य स्थिता मुने ! ॥३४॥

गण अपने-अपने अधिकारानुसार अपने-अपने लोकों में स्थित होकर भाग एवं कार्यों का सम्पादन करते हैं ॥३०-३१॥

नवनिधियाँ एवं अष्टादशसिद्धियाँ यानी अणिमा महिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशिता वशिता एवं कामावसायिता तथा शरीर में भूख प्यासों का न होना बहुत दूर की वस्तु को देख-सुन लेना मन के साथ शरीर का दूर पहुंच जाना इच्छानुसार रूप बना लेना पर काय प्रवेश इच्छा मृत्यु देवों का अप्सराओं के साथ क्रीडा का दर्शन संकल्प की सिद्धियां सब जगह अप्रतिहत गति तथैव त्रिकालज्ञत्व अद्वन्द्वत्व परचित्ताभिज्ञत्व अग्नि सूर्य जल विष आदि को स्तंभित कर देना आदि अनेक सिद्धियां तथा तैंतीस करोड देवता गन्धर्व और अप्सरागण उस धाम के प्रथमावरण में नित्यनिवास करते हैं ॥३२॥

द्विज श्रेष्ठ भरद्वाजजी ! और श्रीरामजी के भक्ति में निरत अपने-अपने आयुध एवं गणों के साथ विविध प्रकार के देव देवियां नित्य सेवा परायण होकर रहते हैं ॥३३॥

तत्त्व मननशील हे भरद्वाजजी ? उस दिव्यधाम श्रीसाकेत के प्रथम आवरण में ही सप्तर्षि एवं नारद तथा सनकादि अन्य श्रेष्ठ मुनिलोग नित्य रहते हैं ॥३४॥

वेदमूर्तिधराः शास्त्रविद्याश्चविविधास्तथा ।
पञ्चधामुक्तयश्चापि रूपवत्यः पृथक् पृथक् ॥३५॥
कर्मज्ञानं च वैराग्यं योगश्च साधनैः सह ।
द्वितीयावरणे नित्यं स्वस्वरूपेण संस्थिताः ॥३६॥
सच्चिज्ज्योतिर्मयं ब्रह्मनिरीहं निर्विकल्पकम् ।
निर्विशेषं निराकारं ज्ञानाकारं निरञ्जनम् ॥३७॥
अवाच्यमगुणं नित्यमनन्तं सर्वसाक्षिकम् ।
इन्द्रियविषयं सर्वैरग्राह्यं स्वप्रकाशकम् ॥३८॥

भरद्वाज ? उस श्रीसाकेतधाम के दूसरे आवरण में दिव्य मूर्ति धारण किये वेद एवं मूर्ति के ही स्वरूप में विविध प्रकार के शास्त्र तथा विद्याएं और अलग-अलग रूप धारण की हुई कैवल्य सालोक्य सामीप्य सार्ष्टि एवं सायुज्य ये पांच प्रकार की मुक्तियां एवं स्व-स्व साधनों के साथ मूर्तिमान्‌रूप में ही योग ज्ञान, वैराग्य तथा कर्म अपने-अपने स्वरूप से नित्य रहते हैं ॥३५-३६॥

महर्षि ? दिव्यधाम श्रीसाकेत के तृतीय आवरण में उस ब्रह्म का संस्थान है ऐसा परमबुद्धिमान साधन संपन्न व्यक्ति बतलाते या कहते हैं जो सत् चित् एवं ज्योतिर्मय है निरीह तथा निर्विकल्प है, और निर्विशेष एवं निराकार तथा ज्ञानस्वरूप एवं निरञ्जन है, और अवाच्य यानी सामान्यतः वर्णन न किया जा सके ऐसा है अगुण, नित्य, अनन्त एवं सर्वसाक्षिरूप है तथा इन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जासके ऐसा एवं साधना रहित जनों से अग्राह्य तथा स्वयं प्रकाशरूप है, जो कि संन्यासी योगी ज्ञानी व्यक्तियों का लय स्थान है ॥३७-३९॥

न्यासिनां योगिनां यच्च ज्ञानिनां च लयास्पदम् ।
तृतीयावरणे तद्वै साकेतस्य विदुर्बुधाः ॥३९॥
केचित्तु कैवल्यानां हि तत्रावासं वदन्ति हि ।
गर्भोदकनिवासी च क्षीरार्णवनिवासकृत् ॥४०॥
श्वेतदीपाधिपश्चाथ रमावैकुण्ठनायकः ।
चतुर्विंशत्यवताराः सन्ति तत्र पृथक् पृथक् ॥४१॥
सलोकाः सगणाः सर्वे मथुरा च महापुरी ।
पुरी द्वारावती नित्या काशीलोकैकवन्दिता ॥४२॥
काञ्चीमायापुरीदिव्या तथा चावन्तिकापुरी ।
अयोध्यामेवसेवन्ते चतुर्थावरणे स्थिताः ॥४३॥

कितने ही आचार्यों का कहना है कि इस तीसरे आवरण में केवल कैवल्य प्राप्तों का ही आवास है। उदक गर्भ में निवास करने वाले एवं क्षीरार्णव में निवास करने वाले तथा श्वेत दीप के अधिपति और रमावैकुण्ठ के अधिनायक एवं चौबीसों अवतार भी श्रीसाकेत के इसी तीसरे आवरण में अलग-अलग रूप से अवस्थित हैं ॥४०-४१॥

भरद्वाजजी ! महापुरी मथुरा नित्या द्वारावतीपुरी सभी लोकों से वन्दित काशीपुरी, काञ्चीपुरी एवं दिव्य-मायापुरी तथा अवन्तिकापुरी में सभी अपने-अपने गण और लोक के साथ चतुर्थ आवरण में रहकर अयोध्या जी का ही सेवन करते हैं ॥४२-४३॥

इस दिव्यधाम साकेत के पूर्वदिशा में सत्, चित् एवं आनन्द रूपिणी नित्या तथा सभीप्रकार से आश्चर्यवाली मिथिलानाम की पुरी है ॥४४॥

साकेतपूर्वदिग्भागे श्रीमती मिथिलापुरी ।
सर्वाश्चर्यवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी ॥४४॥
हर्म्यैः प्रासादवर्यैश्च नानारत्नपरिष्कृतैः ।
विमानैर्विविधैरुच्चैश्चित्रध्वजपताकिभिः ॥४५॥
भ्राजते परिखादुर्गविविधोद्यानसंकुला ।
तस्यां श्रीमन्महाराजः शीरकेतुः प्रतापवान् ॥४६॥
श्वशुरो रामचन्द्रस्य वात्सल्यादिगुणार्णवः ।
निमिवंशध्वजः शूरश्चतुरङ्गबलान्वितः ॥४७॥
वेदवेदान्तसारज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ।
धनुर्वेदविदां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ॥४८॥

जो मिथिलापुरी नानाप्रकार के रत्नों से सुसज्जित अति-सुन्दर बडे-बडे ऊचे-ऊचे प्रासाद श्रेष्ठभवनों से एवं नाना प्रकार के विमानों से अति उच्च तथा सुन्दर नानाप्रकार के ध्वजा पताकाओं से मण्डित है ॥४५॥

वह मिथिला विविध प्रकार के उद्यान, बगीचे, परिखा, खाई तालाब, दुर्ग, किलाओं से व्याप्त होकर शोभा पारही है, उसी पुरी में प्रतापशाली ऐश्वर्यवान् शीरकेतुनाम के महाराज निवास करते हैं ॥४६॥

जो वात्सल्यादि गुणों के समुद्र हैं निमिवंश के कीर्ति ध्वज एवं शूर और चतुरंगिणी बल सेनाओं से युक्त हैं वे ही श्रीरामचन्द्रजी के श्वशुर विदेहराजजनक हैं ॥४७॥

वे वेद एवं वेदान्त के सारतत्त्व को जानने वाले हैं सभी शास्त्रों में विशारद हैं और धनुर्वेद जानने वालों में श्रेष्ठ हैं तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से समन्वित-युक्त हैं ॥४८॥

दासीदासगणैर्नित्यं सेवितो वसति स्वराट् ।
दक्षिणस्यां दिशि श्रीमान् कोशलाया गिरिर्महान् ।।४९।।
भ्राजते चित्रकूटः सच्चिन्मयानन्दमूर्तिमान् ।
नानारत्नमयैः शृङ्गैर्विचित्रैश्चित्रपादपैः ।।५०।।
सुधास्वादुफलै रम्यैः पुष्पभारावलम्बिभिः ।
लताजालवितानैश्च गुञ्जद्भ्रमरसंकुलैः ।।५१।।
मत्तकोकिलसन्नादैः कूजद्भिश्चित्रपक्षिभिः ।
नृत्यन्त्तमयूरैश्च निर्झरैर्निमलाम्बुभिः ।।५२।।

वे ही सम्राट् विदेहराज जनक दासी एवं दास वर्गों से सेवित होकर सर्वदा उस मिथिलापुरी में निवास करते हैं । श्री कोशल-अयोध्यानगरी के दक्षिणदिशा में सर्व श्री ऐश्वर्य शोभा-सम्पन्न महान् पर्वत गिरिराज चित्रकूट है ।।४९।।

भरद्वाज ! वह श्रीराम विहारस्थल चित्रकूट सत् चित् एवं आनन्द मूर्तिवाला है नाना प्रकार के रत्नमयशृंग-शिखरों तथा अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र रंग-विरंगे वृक्षों से सुशोभित है ।।५०।।

वह श्रीसीतारामजी का क्रीडास्थल सुन्दर एवं सुधा अमृत के समान सुस्वादु फलों एवं विविध प्रकार के पुष्पों के भारों से लटके हुये लताओं के जाल-समूहों रूपी वितानों से तथा मधुर गुञ्जन करते हुये भ्रमर समूहों से शोभायमान है ।।५१।।

वह दिव्यगिरि मदोन्मत्त कोयलों के सुन्दर शब्दों एवं अनेक प्रकार के पक्षियों के कूजन-मधुरस्वरों तथा अपने मस्ति में मस्त नाचते हुये मयूरों और निर्मल अतिस्वच्छ जलवाले निर्झर-झरनाओं से सर्वदा शोभित रहता है ।।५२।।

अन्य पर्वतों से विशिष्टता रखने वाला गिरिराज चित्रकुट

सीतयासह रामस्य लीलारसविवर्द्धनः ।
चिद्रूपा काञ्चनीभूमिः समा रत्नैर्विचित्रिता ॥५३॥
समन्तात्पर्वतेन्द्रस्य दिव्यकाननमण्डिता ।
यत्र मन्दाकिनी रम्या वहति श्रीमतीनदी ॥५४॥
मणिनिर्मलतोयाढ्या वज्रवैडूर्यबालुका ।
गुञ्जन्मधुकरश्रेणी प्रफुल्लकमलाकुला ॥५५॥
चित्रपक्षिकलक्वाणमुखरीकृतदिक् तटा ।
स्वर्णस्फटिकमाणिक्यमुक्ताबद्धतटद्वया ॥५६॥
चित्रपुष्पलतापुञ्जकुञ्जानि शोभितानि च ।
मधुराणि सहस्त्राणि तस्यास्तीरद्वयोरपि ॥५७॥

श्रीसीताजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी के लोकोत्तर लीलाओं के रसों को वढाने वाला है, वह चित् स्वरूप है सम्पूर्ण रत्नों से युक्त चित्र-विचित्र दिव्य स्वर्णमय भूमि है ॥५३॥

उस पर्वतेन्द्र-पर्वतराज चित्रकूट के चारों तरफ से दिव्य कानन वनों से सुशोभित सर्वैश्वर्यशाली अतिरमणीय सर्वपाप हारिका मन्दाकिनी नदी वहती है ॥५४॥

जो मन्दाकिनी गंगा नीलमणि के समान निर्मल जल से युक्त वज्र हीरा वैडूर्य रूप बालुका से शोभित और गुञ्जायमान भ्रमरों के समूहों से युक्त तथा विकशित कमल श्रेणी से व्याप्त है ॥५५॥

वह गंगा का चित्र-विचित्र अनेक प्रकार के पक्षियों के कलरवों से चारों ओर का तट-किनारा मुखरित है और स्वर्ण स्फटिक माणिक्य एवं मुक्ता आदि रत्नों से दोनोंतट आबद्ध-शोभित है ॥५६॥

इस मन्दाकिनीके दोनोंतट दोनों; तरफ के किनारे अति-

सन्तिनित्यविहारार्थं जानकीरामचन्द्रयोः ।
अयोध्यापश्चिमेभागे कृष्णस्य परमात्मनः ॥५८॥
नित्यं वृन्दावनं धाम चिन्मयानन्दमद्भुतम् ।
समन्ताद्भूः समायत्र काञ्चनीरत्नचित्रिता ॥५९॥
दिव्यवृक्षैर्लताकुञ्जैर्गुञ्जन्मत्तमधुव्रतैः ।
नवीनैः पल्लवैः स्निग्धैःफलैः पुष्पैश्चसन्नतैः ॥६०॥
नदत्पक्षिगणैश्चित्रैर्मयूरैश्चविराजते ।
गोवर्धनोगिरिर्यत्र काञ्चनोरत्नमण्डितः ॥६१॥

सुन्दर-मधुर हजारों अनेक प्रकारके पुष्प एवं लताओं के समूहों से बने अतिरमणीय कुञ्ज से सुशोभित हैं ॥५७॥

जो कुंज श्रीजानकीजी की एवं श्रीरामचन्द्रजी के नित्यबिहार के लिये सर्वदा दिव्यस्वरूप से ही रहते हैं। उस दिव्यधाम अयोध्या के पश्चिमभाग में परमात्मा श्रीकृष्णजी का नित्यधाम वृन्दावन है ॥५८॥

जिस वृन्दावनमें सत् चित् एवं आनन्दमय अतिअद्भुत तथा रत्नों से खचित चारों तरफ स्वर्णमय समतलभूमि शोभित है ॥५९॥

वह धाम लताओं कुञ्जों से एवं गुञ्जायमान करते भ्रमरों के समूहोंसे तथा चीकने नवीन कोसलपत्तों मधुरफलों और पुष्पोंसे झुके अनेकप्रकार के दिव्य वृक्षों से युक्त है ॥६०॥

उस वृन्दावन में अनेकप्रकार के पक्षिसमूहों से नादित अव्यक्त शब्दोंसे शब्दायमान एवं मयूरों से शब्दायमान रत्नोंसे मण्डित स्वर्णमय गोवर्धननामक गिरिराज विराजमान है ॥६१॥

वह गिरिराज गोवर्धन गुहों-कन्दराओं झरनों के समूहोंएवं लता और वृक्षों से संकीर्ण-व्याप्त होकर शोभमान है। जहां

लतापादपसंकीर्णोगुहानिर्झरकूटवान् ।
नदी यत्र महापुण्याकालिन्दीकृष्णवल्लभा ॥६२॥
नीलरत्नजलोत्तुंगतरङ्गावर्त्तमालिनी ।
फुल्लपंकेरुहामत्तकूजद्भृङ्गविहङ्गमा ॥६३॥
स्वर्णघट्टतटारत्न बालुका शोभते भृशम् ।
गोपीगोपगणैर्नित्यैर्गोवृन्दैर्गोपबालकैः ॥६४॥
श्रीमन्नन्दयशोदाभ्यां भ्रात्रा श्रीमद्बलेन च ।
सखीभिर्गोयकन्याभिर्वृषभानुसुतादिभिः ॥६५॥
सार्धं वसति तत्रैव श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः ।
क्वणद्वेणुमनोहारी विहारीरासमण्डले ॥६६॥

पर श्रीकृष्णजी की प्यारी महापुण्यरूपा कालिन्दी नदी सुशोभित है ॥६२॥

वह कालिन्दी नीलरत्नरूपी जल के ऊँचे तरंग एवं आवर्त्त रूप मालाओं तथा फूले हुये कमलों और मदोन्मत्त होकर गान करते भ्रमरों से युक्त है ॥६३॥

वह यमुनानदी सुवर्णमयघाट एवं तटवाली है तथा रत्नमय बालुका और श्रीकृष्ण के नित्य सहचर गोपियां गोपसमूहों गायों के समूहों एवं गोपबालकों से सर्वदा अति शोभित रहती है ॥५४॥

उस वृन्दावन में भाई श्रीमान् बलदेवजी सर्व श्रीसम्पन्न नन्दजी एवं यशोदाजी और सखियों, गोपकन्यायों तथा वृषभानु सुता श्रीराधिकाजी एवं अन्य सखियों के साथ ॥६५॥

श्रीराधिकाजी के मुखरूपी कमल के मकरन्दास्वादक भ्रमर रूप मनोहारी वेणु को बजाते हुये रासमण्डल में विहार करनेवाले पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रजी ऊपर वर्णित सभी के साथ उसी वृन्दावन में निवास करते हैं ॥६६॥

श्रीराधिकामुखाम्भोजमकरन्दमधुव्रतः ।
सत्यायाश्चोत्तरे भागे महावैकुण्ठसंज्ञकम् ॥६७॥
महाविष्णोः परंधाम ध्रुवं वेदैः प्रकीर्तितः ।
सर्वतः खचिता रत्नैर्भुमिर्यत्रहिरणमयी ॥६८॥
वापीकुण्डतटागैश्च दिव्यारामैर्विराजते ।
समन्ताच्च नदी यत्र विरजा फुल्लपंकजा ॥६९॥
स्वच्छस्फटिकतोयौघावर्त्ततुङ्गतरङ्गिणी ।
स्वर्णरत्नतटारम्या वज्रस्फटिकसैकता ॥७०॥
भृङ्गपक्षिगणोद्घुष्टकोलाहलसमाकुला ।
प्रासादैः पार्षदेन्द्राणां विमानैर्विविधैस्तथा ॥७१॥

सत्या—सत्यस्वरूपा उस अयोध्या के उत्तर भाग में महावैकुण्ठ नामक दिव्यधाम है ॥६७॥

वह वैकुण्ठ नामवाला महाविष्णुजी का परमधाम वेदों से सदा कीर्तित है । जो रत्नोंसेस र्वतोभावसे खचित व्याप्त है एवं वहाँ की भूमि—हिरण्मयी स्वर्णमयी है ॥६८॥

वह धाम वापी, कुण्ड तालाब एवं दिव्य बगीचाओं से शोभित है । जहाँ पर प्रफुल्लित कमलवाली विरजानाम की नदी चारों-ओर सुशोभित है ॥६९॥

वह विरजा नदी स्वच्छ स्फटिकमणि के समान जल समूहों के आवर्त एवं ऊचे तरंगवाली और सुवर्ण एवं रत्नोयुक्त तट वाली तथा वज्र हीरा और स्फटिकों से युक्त या वज्र स्फटिकमय-बालुकावाली अतिरमणीय है ॥७०॥

वह विरजा नदी भौंरे अनेकप्रकारके पक्षिसमूहों के सुन्दरस्वर कलरवों के कोलाहलोंसे व्याप्त युक्त है । वह महावैकुण्ठ सेवा

चित्रशालोत्तमैर्दिव्यैर्हर्म्यजालैः सहस्रशः ।
उच्चैर्ध्वजपताकाग्रैरत्नकाञ्चनचित्रितैः ॥७२॥

ललनारत्नसंघैश्च तल्लोकं द्योततेऽधिकम् ।
हैरण्यं सुमहद्रत्नैः खचितं परमायतम् ॥७३॥

तत्रैकंभवनप्रांशुप्रासादैः परिवारितम् ।
सहस्रैः कलशैर्भान्तं ध्वजैश्चित्रैश्चकेतुभिः ॥७४॥

मुक्तादामवितानैश्च चित्ररत्नगवाक्षकैः ।
महद्वज्रकपाटैश्च मणिस्तम्भैः सहस्रशः ॥७५॥

परायण भगवान् के श्रेष्ठ पार्षदों के प्रासादों एवं नानाप्रकार के विमानों से युक्त है ॥७१॥

वहाँ स्थित आवासदिव्य, अतिउत्तम, चित्रशालाओं, हजारों हर्म्यजालों विविधप्रकार से सजाये गये उत्तम मकानों एवं ऊंचे-ऊंचे ध्वजा-पताकाओं तथा रत्न एवं सुवर्ण से चित्रित हैं ॥७२॥

वह लोक ललनाओं के समूों एवं रत्नसमूहों से या ललना रूपी रत्नसहमू से अधिक प्रकाशमान या शोभमान रहता है। उसी लोक में एक भवन है जो सुवर्णमय अतिकीमति अच्छे रत्नों से शृंगारित अतिविशाल, अति उच्च एवं अनेक प्रासाद मकानों से घिरा हुआ है, तथा हजारों कलशों बडे ध्वजाओं पताका एवं चित्रविचित्र केतु छोटे मध्यम पताकाओं से सदा सुशोभित रहता है ॥७३-७४॥

वह भवन मुक्ताओं के दोरिओंसे सज्जित वितानों झालों चित्रविचित्र नानाप्रकार के रत्नों से शृंगारित वातायन जंगलाओं बडे बडे हीरों से अंकित कपाटों एवं हजारों मणि के स्तभोंसे सुसज्ज है ॥७५॥

रत्नाङ्गणं महाकक्षं भाति तल्लोकभूषणम् ।
तन्मध्ये शेषपर्यंके. नित्यसत्वैकविग्रहः ॥७६॥
आस्तेनाराणोनित्यः किशोरः सद्गुणार्णवः ।
मेघश्यामश्चतुर्बाहुस्तडित्पीताम्बरावृतः ॥७७॥
श्यामस्निग्धालकव्रातैरुल्लसन्मुखपङ्कजः- ।
महारत्नकिरीटेन कुण्डलाङ्गदकंकणैः ॥७८॥
श्रीवत्सकौस्तुभाभ्या च सद्गन्धिवनमालया ।
वैजयन्त्योपवीतेन मुद्रिकाहारनूपुरैः ॥७९॥
स्वर्णसूत्रेण काञ्च्यादिभूषणैर्भूषितो विभुः ।
शंखचक्रगदापद्माद्यायुधैश्चाप्यलंकृतः ॥८०॥

उस भवन का आंगन भी रत्नों से खचित है एवं महान् कक्ष होने से उस वैकुण्ठ लोक का भूषणरूप वैभव सुशोभित है । उसी भवन के मध्यभाग में स्थित शेषपर्यङ्क शेषशय्यामें सत्वस्वरूप श्रीविग्रह वाले सद्गुणों के समुद्र सदाकिशोरावृत्ति वाले मेघ के समान श्याममूर्ति तथा चार हाथ वाले और बिजली के समान चमकने वाले पीताम्बर वस्त्र से शोभित श्रीनारायणजी सदाविराजमान रहते हैं ॥७६-७७॥

वे श्याम तथा चीकनेबालों के समूहो से प्रफुल्लित मुखरूपी कमल वाले एवं महारत्नों से जटित किरीट तथा कुण्डल और वाहुबन्दों एवं कंकणों से शोभित है ॥७८॥

वे श्रीनारायण वक्षस्थलों में स्थित श्रीवत्सचिह्न एवं कौस्तुभ मणि और सुगन्धपूर्ण वनमाला तथा वैजयन्तीमाला स्वर्णमय यज्ञोपवीत एवं मुद्रिका, हार तथा नूपुरों से शोभा पा रहे हैं ॥७९॥

सर्व व्यापक श्रीनारायणजी स्वर्णसूत्रों कटिबन्धों आदि अनेक

विभाति श्रीमतीभिश्च श्रीभूलीलादिशक्तिभिः ।
विष्वक्सेनादयो नित्यमुक्तामुक्ताश्च सूरयः ॥८१॥
शुद्धसत्वात्मकाः सर्वे श्यामलाङ्गाश्चतुर्भुजाः ।
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः पद्माक्षाः पीतवाससः ॥८२॥
सुकेशाः सुस्मितादिव्य माल्यालंकारभूषिताः ।
सर्वायुधधरादिव्यललनायूथसेविताः ॥८३॥
भगवन्तं श्रियाजुष्टं सेवन्तेऽहर्निशं मुदा ।
मिथिलाचित्रकूटश्च श्रीमद्वृन्दावनं तथा ॥८४॥

प्रकारके भूषणों से विभूषित हैं एवं शंख, चक्र, गदा तथा पद्मादि आयुधों, शस्त्रों, अस्त्रों से भी अलंकृत हैं ॥८०॥

वे श्रीनारायणजी ऐश्वर्य शालिनी श्रीशक्ति भूशक्ति एवं लीला-शक्तियों से तथा विष्वक्सेन प्रभृति नित्यमुक्त और मुक्त सूरिगणों से सेवित एवं शोभित है ॥८१॥

उनके सेवक सूरिलोक भी सभी शुद्ध, सत्व वाले तथा श्यामशरीर एवं चारहाथ वाले और दिव्यगन्धों से लेपित अंग वाले तथा कमल के समान आंख एवं पीलेवस्त्र वाले हैं ॥८२॥

वे सूरिगण सुन्दर केशबाले एवं मंदमुस्कान तथा दिव्यमाला एवं अलंकारों से भूषित हैं, और दिव्य ललनाओं के समूहों से सेवित तथा सभी दिव्य आयुधों को धारण किये हुये हैं यानी भगवान के पार्षद भी उनके समान ही आयुध वस्त्र एवं अलं-कार वाले होते हैं तथा भोगों में भी समानता रहती है केवल जगत् व्यापार, सृष्टि कर्म में ही जीव में समानता नहीं है इस विषय की विशेष चर्चा "जगद्व्यापारवर्जम्" प्रभृति सूत्र व्या-ख्यान प्रसंगमें आनन्दभाष्य की टीका एवं श्रीरघुवरीय वृत्ति के सारबोधिनी में कर चुका हूं अतः विशेषार्थी वहीं देखें ॥८३॥

ये सभी पार्षदगण श्री से शोभित भगवान की सर्वदा रात

महावैकुण्ठमेतद्धि पञ्चमावरणे मुने ! ।
ततस्तु परमानन्दसन्दोहं परमाद्भुतम् ॥८५॥
अयोध्यायाश्चतुर्दिक्षु चतुर्विंशतियोजनम् ।
सर्वतोवेष्टितं नित्यं स्वप्रकाशं परात्परम् ॥८६॥
सच्चिदेकरसानन्दं मायागुणविवर्जितम् ।
वाङ्मनोगोचरातीतं प्रमोदारण्यसंज्ञकम् ॥८७॥
रामस्यातिप्रियं धाम नित्यलीलारसास्पदम् ।
जाम्बूनदमयी यत्र भूः समन्तात् प्रकाशते ॥८८॥
चिद्रूपिणीसमाश्लक्ष्णा परानन्दविवर्धिनी ।
चन्द्रकान्तोपलैश्चित्राक्वचिच्चस्फटिकोपला ॥८९॥

दिन प्रसन्नता पूर्वक सेवा करते हैं। हे मुनिभरद्वाजजी ? उस दिव्यधाम साकेत के पांचवें आवरण में श्री मिथिला, श्रीचित्रकूट श्री वृन्दावन तथा ऊपर वर्णित यह महावैकुण्ठधाम हैं ।८४।

उस पांचवें आवरण के वाद श्रीअयोध्याजी के चारों ओर चौवीश योजन विस्तार वाला प्रमोदाख्या यानी प्रमोदवन हैं जो परम आनन्द को प्रदान करने वाला परम अद्भुत, अतिश्रेष्ठ एवं सर्वतों भाव से यानी अयोध्या के चारोंओर से परिवेष्टित होकर परात्पर स्वरूपतया नित्य स्वयं प्रकाशरूप से रहता हैं और वह मायिक गुणों से रहित सत् चित् एवं आनन्दस्वरूप तथा वाणी और मन के भी प्रत्यक्ष का विषय नही हैं यानी असंस्कृत, मनवाणी से उसका वर्णन या अनुभव नहीं हो सकता है ।८५-८६-८७।

उस दिव्यप्रमोदवन से युक्त श्रीरामजी का अत्यन्त प्रिय एवं नित्यलीला सम्बन्धी रसों का स्थान अतिदिव्यधाम है, जहाँचारों तरफ अप्राकृतिक सुवर्णमयी भूमि प्रकाशीत रहती हैं ।८८।

वह दिव्यभूमि परम आनन्द को बढानेवाली समतल मृदु

मणिभिः पद्मरागैश्च क्वचिद् वज्रैर्महाप्रभैः ।
इन्द्रनीलोपलैर्बद्धा माणिक्यैर्विविधैः क्वचित् ॥९०॥
रत्नैर्वंशच्छदैर्भातिर्वैडूर्यैः खचिता क्वचित् ।
अभिद्धाभिश्च मुक्ताभिः प्रवालैश्चक्वचित्क्वचित् ॥९१॥
महार्घैश्चित्रितारत्नैर्नीलपीतासितारुणैः ।
स्यमन्तैर्भ्राजमानैश्चचिन्तारत्नचयैस्तथा ॥९२॥
चित्रिता वसुधा सर्वा द्योतयत्यधिकं प्रियम् ।
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु क्रमेण तद्वने मुने ! ॥९३॥

चीकनी एवं चित् स्वतप्रकाश स्वरूप वाली है तथा कहीं चन्द्रकान्तमणियों से चित्रित-शोभित है तो कहीं स्फटिक मणियों से सुशोभित है ।८९।

वह दिव्यधाम कहीं पर तो पद्मराग मणियों से कहीं महाप्रभा अति तोजोमय वज्रो-हीराओ एवं कहीं-कहीं पर विविध प्रकारके माणिक्यो और इन्द्रनीलोपल-नीलमणियों से आबद्ध सुसज्ज श्रृंगारित हैं ।९०।

श्रीरामजी की वह दिव्यनगरी कहीं वैडुर्य मणियों से खचित श्रृंगारित शोभित है तो कहीं अन्य रत्नों से वंशच्छदों से जगमगा रही है एवं कहीं-कहीं विना वेधे हुये-अछिद्र तथा अखण्डित मुक्ता एवं प्रवालों से अतिशय चमक रही है ।९१।

वह श्रीसाकेतधाम महामूल्यवान् अनेक प्रकारके नील पीत श्याम एवं अरुण रंग के रत्नों तथा देदिप्यमान स्यमन्तक मणियों और चिन्तामणियों के समूहोंसे खचित होकर अति शोभायमान है ।९२।

पूर्व वर्णित सभी रत्नों एवं मणियों से चित्रित होने से उस दिव्यधाम की सम्पूर्ण भूमि अतिशयद्योतित-प्रकाशमान होकर अतिप्रिय लगती है । हे मुनीश्वर भरद्वाजजी ? उस दिव्य

गिरयः सन्तिचत्वारस्तेषां नामानि मच्छृणु ।
श्रृंगाराद्रिश्चरत्नाद्रिस्तथा लीलाद्रिरेव च ॥९४॥
मुक्ताद्रिश्च स्वयालक्ष्म्या द्योतयन्ति दिशोदश ।
आह्लादिन्याश्च पूर्वस्यां यथाप्रोद्यन् प्रभाकरः ॥९५॥
नीलरत्नमयोभाति श्रृंगाराद्रिर्मनोहरः ।
दक्षिणस्यां दिशि श्रीमद्रत्नाद्रिर्द्योतयन् वनम् ॥९६॥
पीतरत्नमयः कान्त्या भूदेव्या भ्राजते प्रियः ।
प्रतीच्यां दिशि लीलाद्रिर्लीलाललितकान्तिभिः ॥९७॥

प्रमोदवन के पूर्वदिशा के क्रम से चारों दिशाओं में अन्य वन हैं उनका बर्णन सुनें ॥९३॥

भरद्वाजजी ? पूर्वदिशादि क्रम से स्थित चार गिरियां हैं उनका नाम सुनियें श्रृंगारगिरि, रत्नगिरि, लीलागिरि एवं मुक्ता गिरि हैं वे सभी अपनी लक्ष्मी–ऐश्वर्य से दशोंदिशाओं को प्रकाशित करती हैं वे सभी उगते हुये सूर्य के समान चमकिले एवं परम आहूलाद प्रदान करने वाले हैं ।९४–९५।

उनमें से मनोहारी नीलरत्नों से मण्डित श्रृंगार वन पूर्व-दिशा में है जो परम आहलाद जनक उगते सूर्य के समान चम-कीला है । उस धाम के दक्षिणदिशा में अन्य वनों को प्रकाशित करता हुआ ऐश्वर्यशाली रत्नवन है ।९६।

उस दिव्यधाम श्रीसाकेत के पश्चिम दिशा में लीलाद्रि है जो श्रीरामचन्द्रजी को प्रिय है पीले रत्नमय कान्ति भूदेवी एवं सर्वेश्वर श्रीरामजी की लीला रूपी ललित अतिकमनीय कान्ति से सुशोभित है ।९७।

राजते रक्तरत्नाढ्यो रामस्य रतिवर्धनः ।
श्रियादेव्या हि लीलार्थं मुक्ताद्रिर्मण्डितोमहान् ॥९८॥
उदीच्यामुज्ज्वलो रत्नैश्चन्द्रकान्तैरुदञ्चते ।
चित्रपुष्पौघसम्पन्नैर्लतापुञ्जवितानकैः ॥९९॥
स्वल्पीकृतसुधास्वादुफलभारातिसन्नतैः ।
नवीनपल्लवोपेतैर्गुञ्जन्मत्तमधुव्रतैः ॥१००॥
कूजच्चित्रद्विजैर्नीलकण्ठकेकिनिनादितैः ।
प्रमत्तकोकिलक्वाणमुखरीकृतदिङ्मुखैः ॥१०१॥

भरद्वाज जी ! श्रीधाम के उत्तर दिशा में सर्वेश्वर श्रीरामजी की रति को वढाने वाला लालरत्नों से सुशोभित मुक्ताद्रि है जो परमोज्वल एवं महान् है श्रीदेवी=सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के लीला के लिये और चन्द्रकान्तमणियों से मण्डित होकर अतिशय प्रकाशित हो रहा है ।९८।

उस दिव्यधाम के चारों ओर स्थित चारों ही दिव्यवन चित्र विचित्र-नानाप्रकार के पुष्पों के समूहों से युक्त है एवं लताओं के समूह रूप वितानो से युक्त हैं ।९९।

वे चारों ही गिरि अमृत के आस्वाद को भी तिरस्कृत कर देने वाले अतिस्वादु फलों के भार से अतिशय झुकेहुये एवं नवीन पत्तों से युक्त होने से गुञ्जायमान करते हुये भ्रमर के समूहों से युक्त अनेक प्रकार के वृक्षों से मण्डित हैं ।१००।

जो वे वनमें कूजते हुथे अनेक प्रकार के पक्षिओं एवं नीलकण्ठ और मयूरों के सुस्वरों से निनादित-सुशब्दित प्रमत्त कोयलों के कर्ण मनोहर शब्दों से चारोदिशाओं को मुखरीकृत-समुज्वल झंकृत किये जारहे हैं ।१०१।

विचित्रैर्विविधैःस्निग्धैर्वृक्षैर्नित्यमधुस्रवैः ।
उन्नतैः शिखरैर्भातैः स्यन्दमानैश्चनिर्झरैः ॥१०२॥
गुहाभिश्च विराजन्ते चत्वारस्ते नगोत्तमाः ।
तत्प्रमोदवने सन्ति मधुराणि नवानि च ।१०३।
द्वादशवनरत्नानि तन्नामानि श्रृणुष्व मत् ।
श्रीश्रृंगारवनं भास्वद्विहारवनमद्भुतम् ।१०४।
तमालं च रसालं च चम्पकं चन्दनं तथा ।
पारिजातवनं दिव्यमशोकवनमुत्तमम् ।१०५।
विचित्राख्यं वनं कान्तं कदम्बवनमेव च ।
तथाऽनङ्गवनं रम्यं वनं श्रीनागकेशरम् ।१०६।

वे चारो वन सर्वदा मधु को प्रवाहित करने वाले चित्रविचित्र एवं नानाप्रकार के स्निग्ध वृक्षों और जगमगाते हुये अति ऊंचे शिखरों तथा प्रवाहित होतेहुये निरझरों-झरनाओं से शोभित हैं ।१०२।

वे चारों के चारों ही दिव्य पर्वत अनेक प्रकार के गुहाओं से शोभित होकर स्थित हैं । उसी प्रमोद बन में मधुर-सुखप्रद अतिरम्य एवं सदा नवीनरूप से रहने वाले बारह बन हैं ।१०३।

वे वह वन वनो के रत्न हैं-अतिश्रेष्ठ हैं उनके नामो को मुझसे सुनें पहला अतिप्रकाशमान श्रीशृंगार वन दूसरा अति अद्भुत विहार बन है ।१०४।

तीसरा तमाल वन है चौथा रसालवन है पांचवां चम्पक वन है तथा छठा चन्दनवन है सातवा अतिदिव्य पारिजातवन है आठवां अति उत्तम अशोक वन है ।१०५।

नवमां अति मनोहर विचित्र नाम का वन है दशवां अति

द्वादशैतानि नामानि वनानां कथितानि ते ।
सर्वेषु सान्द्रनीलाभ्रनिभेषु विपिनेषु च ।१०७।
निविडेषु नवा नित्या विचित्रा विविधाद्रुमाः ।
चिन्मयाः कमनीयाश्चाकिशोराः कामविग्रहाः ।१०८।
सुस्निग्धाः कोमलाः सूक्ष्याश्च्योतन्त्यमृतविप्रुषः ।
नवीनैः पल्लवैः श्लक्ष्णैर्मृदुलैर्वायुचाञ्चलैः ।१०९।
विचित्रैर्लम्बितैर्नीलहरित्पीतारुणैर्घनैः ।
पुष्पाणां पञ्चवर्णानां दिव्यायां च सुगन्धिनाम् ।११०।
नवानामप्रमेयाणां नित्यानामभितो भृशम् ।
प्रफुल्लानां सुधास्वादुफलानां च विशेषतः ।१११।

मनोहारी कदम्ब वन है ग्यारहवां अतिरम्य अनंग वन है तथा बारहवां रमणीय श्रीनागशेर वन है ।१०६।

हे भारद्वाजजी ? आप को उन वनो के ये बारह नाम कहा उन सभी सघन नीलमेघ के समान कान्ति बाले वनो में निम्न प्रकार के वृक्षादि हैं १०७।

निविड–अतिसघन उन वनो में नित्य रहने वाले नवीन एवं चित्र विचित्र विविध प्रकार के वृक्ष हैं जो अतिकमनीय मनोहारी–रमणीय चिन्मय तथा कामदेव के विग्रह–शरीर के समान और किशोर अवस्था वाले हैं १०८।

भरद्वाजजी ? वे सभी वृक्ष वायु से चंचल–कंपित नये कोमल चिकने पत्तों से सुशोभित छोटे-बडे कोमल एवं स्निग्ध तथा अमृत के बूंदो को सदा चूहाते हुये सुशोभित हैं ।१०९।

वे वृक्ष विचित्र प्रकार से लटके हुये सघन नीले, हरे, पीले एवं अरुण रंग के तथा दिव्य और सुगन्ध वाले पंचवर्ण पुष्पो से युक्त हैं ।११०।

उन वनों में स्थित वृक्ष सामान्यतः गिना न जासके

महाभारेण शाखाभिर्लुण्ठन्ति धरणीतले ।
दिव्यस्वर्णमहारत्नजालैश्चित्रितवेदिकाः ।११२।
पञ्चप्रकारसत्पुष्पव्रतत्योघवितानकाः ।
सुवर्णवल्कलास्तत्रमुक्तापुष्पावतंसकाः ।११३।
लताश्चिन्तामणिफलारत्नपल्लवशोभिताः ।
नानापुष्परजः पृक्तशबलाः षट्पदामुदा ।११४।
अनन्ता यत्र गुञ्जन्ति भ्रमन्तो गन्धगृध्नवः ।
मत्ताः पुष्परसं पीत्वा पतन्ति पृथिवीतले ।११५।

उतने नित्य नवीन वृक्षो के चारों ओर खूब लगेहुये अति स्वाद युक्त फलो जो विशेष रूप से प्रफुल्ल-स्वच्छ दिखाई देते हैं से शोभित हैं ॥१११॥

वे वृक्ष दिव्य सुवर्ण एवं महारत्नो के जालों से चित्रित वेदिका वाले तथा फलों एवं फूलों के महाभार से लदे शाखाओं से धरणीतल को स्पर्शकरते हुये शोभा पा रहे हैं ।११२।

वहाँ के सभी वृक्ष जाती मालती यूथिका प्रभृति पांचप्रकार के अच्छे पुष्पों के लता समूहों के वितान वाले एवं सुवर्ण के वल्कल-छाल और मुक्ताओं के पुष्पों से सुशोभित हैं ।११३।

जिन वनों के वृक्षों में रत्न रूपी पल्लवों से शोभित चिन्तामणि रूपी फलों से युक्त लताएं हैं, जिनमें नाना प्रकारके पुष्पों के रजकणों से संपृक्त रंगबिरंगे-चितकबरे भौंरे आनन्द से गूंज रहे है ॥११४॥

जिन वनों में पुष्पगन्धों को लेने ग्रहण करनेके लिये लालायित गुञ्जायमान करते हुये सदा भ्रमणशील अनन्त भ्रमर पुष्परस को पीकर मदसे मत्त होकर पृथिवी में गिर जाते हैं ।११५।

वे भौंरे जमीन पर गिरकर पुनः उठकर पुष्पोंके समूह की

पुनरुत्थाय धावन्ति पुष्पौघेषु मुहुर्मुहुः ।
प्रविलीयपलायन्ते द्रुममन्यं हि यूथशः ।११६।
समन्ताद् भ्रमरीभिस्ते विक्रीडन्ते समं मुदा ।
अनन्तानिर्वृता मत्ताः क्वचित् कूजन्ति कोकिलाः ।११७।
सारिकाश्चशुकाश्चित्राः क्वचिद्गायन्ति सङ्घशः ।
क्वचित्पारावतव्राताः कपोताश्चाक्वणन्ति हि ।११८।
रटन्ति रागिणोऽत्यन्तं चाञ्चलाश्चातकाः क्वचित् ।
चन्द्रमण्डलसंकाशाः प्रमदाभिर्मुदान्विताः ।११९।
हंसा मुक्ताश्च खादन्तो नदन्ति मधुरं क्वचित् ।
क्वचित् क्रौञ्चाश्चाकोराश्चाकलहंसाश्चसारसाः ।१२०।

ओर बार-बार दौडकर जाते हैं, कभी-कभी तो समूह-के-समूह छूपे-छूपे से दूसरे वृक्ष की ओर भागते हुये जाते हैं ।११६।

वे भ्रमर समूह सब ओरसे निश्चित होकर आनन्दपूर्वक भ्रमरीओं के साथ विविध क्रीडा करते हैं, उन वनों में कहीं-कहीं मदमत्त एवं निश्चिन्त हुये अनेक कोयल कूजते रहते हैं ।११७।

हे भरद्वाजजी उन वनों में कहीं पर एकत्र होकर अनेक सारिका गान करती हैं तो कहीं पर अनेक प्रकारके शुकसंघ के रूप में गान करते हैं, एवं कहीं पर वन्दरों के समूह किलकारी कर रहे हैं तो कहींपर कबूतरों के समूह गूंज रहे हैं ।११८।

कहीं पर चन्द्रमण्डल के समान आकर्षक प्रमदाओं के साथ अतिआमोद से चंचल चातकगण रागरागनीओं को खुसी से आलाप रहे हैं ।।११९।।

भरद्वाजजी ? कहीं पर मुक्ता-मोती खाते हुये हंसगण मधुर शब्द कर रहे हैं तो कहीं पर क्रौञ्च चकोर कलहंस एवं सारस मधुर शब्द करते हुए रमण कर रहे हैं ।१२०।

विचित्राः पक्षिणश्चान्ये स्वयोषिद्भिर्मनोहराः ।
रमन्ते नादयन्तश्च वनं नानारवैर्भृशम् ।१२१।
तिरस्कृतामृतस्वादुफलानि विविधानि च ।
अदन्ति तेषु सर्वेषु विचित्रेषु वनेषु च ।१२२।
प्रनृत्यन्ति मयूरीभिः सार्धमत्ताः शिखण्डिनः ।
नित्यश्रीकर्णिकाराश्च कुन्दवृन्दाश्चमल्लिकाः ।१२३।
लवङ्गलतिका जात्यो मालत्योयूथिकास्तथा ।
माधव्यश्चैवकेतक्यो वासन्त्यः परमाद्भुताः ।१२४।
स्थूलपद्माश्चाकञ्जाश्चासेवन्त्योविविधास्तथा ।
अन्याश्चित्रलताः स्वैः स्वै पुष्पौघैर्विविधैर्भृशम् ।१२५।

मुनीश्वर ? मनोहारी अन्य भी अनेकप्रकार के पक्षिगण अपनी अंगनाओं के साथ विविध प्रकारके शब्दों से उन वनों को खूब नादित शब्दायमान करते हुये रमण करते हैं ।१२१।

वे पक्षिवर्ग अमृतफल के स्वाद को भी तिरस्कार करने वाले नानाप्रकार के फलों को उन नानाप्रकार के विचित्र रूप वाले सभी वनों में घूम-घूम कर खाते हैं एवं आनन्दानुभव करते हैं ।१२२।

उन वनों में मयूरीयों के साथ मत्त होकर मयूर नृत्य करते हैं । जहाँ पर सर्वदा श्रीऐश्वर्य का दर्शन होता है और कर्णिकाकार एवं कुन्दपुष्पों का समूह तथा मल्लिका प्रभृति सदा खिले रहते हैं ।१२३।

उन सभी वनोंसे परमअद्भुत-अन्यत्र कहीं भी नहीं ऐसे लवंगलतिका जावंती मालती एवं भूमिका माधवी और केतकी तथा वासन्ती आदि पुष्प लतायें सुशोभित हो रही हैं ।१२४।

उन सभी वनोंको बड़े-बडे कमल एवं कञ्ज तथा नानाप्रकार

प्रकुर्वन्ति वने सर्वं द्रव्यं गन्धाधिवासितम् ।
वाताश्च शीतलामन्दासुगन्धास्तद्वने सदा ।१२६।
प्रवान्ति परमानन्दवर्धनाः षट्पदानुगाः ।
नानापुष्परजोभिश्च रञ्जिताभूर्विराजते ।१२७।
क्वचित्पीताक्वचिन्नीलाहरिद्रक्तासिताक्वचित् ।
पादपप्रच्युतैः पुष्पैराच्छन्नापञ्चवर्णकैः ।१२८।
कुथेवाभातिविस्तीर्णाचित्रवर्णा क्वचित् क्वचित् ।
दीर्घिका विविधास्तत्र मणिनिर्मलवारिणा ।१२९।

के सेवन्ती के फूलें तथा और भी अनेक प्रकार के चित्रविचित्र लताएं अपने-अपने पुष्प समूहों से विविधप्रकार से खूब शोभित कर रहे हैं ।१२५।

भरद्वाजजी ? उन वनों में सभी द्रव्य पदार्थ विशेषोंको वे फूल समूह अपने सुगन्धों से सुगन्धित कर देते हैं एवं उनवनों में वायु भी सर्वदा शीतल मन्द एवं सुगन्धपूर्ण ही प्रवाहित रहता है ।१२६।

तथा उन वनों में भ्रमरों से सेवित परमआनन्द को बढाने वाली नानापुष्पों के रजों से रंजित अतिशोभित दिव्य भूमि शोभा पा रहि है ।१२७।

मुनिश्रेष्ठ ? वहदिव्य भूमि कहीं पीले कहीं नीले कहीं हरे कहीं लाल एवं कहीं सफेद यों पांच वर्ण वाले उन दिव्य पेडों से गिरे हुये पुष्पों से आच्छन्न है ।१२८।

वह भूमि कहीं पर विचित्र वर्णवाली विशाल फैली हुई कुथा विचित्ररूप वाली फूल के समान शोभित है तथा कहींपर मणिके समाननिर्मल पानी से पूर्ण विविध प्रकारके दीर्घिका विशाल सरोवर से सुशोभित हैं ।१२९।

पूर्णमाणिक्यसोपानाः स्फटिकोपलकुट्टिमाः ।
तीरस्थद्रुमसच्छन्नाः प्रफुल्लविविधोत्पलाः ।१३०।
कूजत्पक्षिगणैश्चित्रैर्गुञ्जद्भृङ्गैर्निनादिताः ।
फुल्लपंकजकल्लोलजलागुञ्जन्मधुव्रताः ।१३१।
पुष्करिण्योद्विजोद्घुष्टद्रुमगुल्मलताचयाः ।
तटाकानि सरम्याणि विशालानि वने वने ।१३२।
विचित्रमणिसोपानतीर्थानि विविधानि च ।
कुण्डानि कमनीयानि सन्ति स्फटिकवारिभिः ।१३३।
पूर्णानि फुल्लकल्हारशतपत्राण्यनेकशः ।
भृङ्गसंघप्रगीतानि शुकहंसरुतानि च ।१३४।

भरद्वाजजी ? वे बडे सरोवर माणिक्य के सोपान-सिढ़ी एवं स्फटिक मणिके बने भीत वाले हैं तथा किनारे में स्थित वृक्षो के सघन-सुन्दर छाया एवं खिले हुये नाना प्रकार के कमल वाले हैं ।१३०।

वे सरोवर अनेक प्रकारके पक्षिगणों से कूजित एवं गुञ्जन करते हुये भ्रमरों से निनादित हैं और खले हुये कमलें कल्लोल करते जलें एवं गुञ्जन करते मधुमक्खियोंसे सुशोभित हैं ।१३१।

हे भरद्वाजजी ? उन प्रत्येक वनोंमें वृक्ष एवं लता समूहों में स्थित होकर शब्द करते हुये पक्षिगणों से सुशोभित पुष्करिणी छोटे तलाबों तथा अतिरमणीय विशाल तडाग शोभा पा रहे हैं ।।१३२।।

उन वनों में स्फटिकके समान स्वच्छ पानी से भरे हुये सुन्दर कुण्ड हैं मणिके सोपान सीढ़ी वाले विचित्र प्रकारके नानाविध तीर्थ भी हैं ।१३३।

वे सव अनेक प्रकारके खिले हुये काह्लार पुष्प एवं शतपत्र पुष्पों से युक्त होने से भ्रमर समूहों से गीयमान शब्दायमान और शुको एवं हंसों से रुत उनके शब्दों से झंकृत हैं ।१३४।

सन्नादितवनान्तानि नदद्भिश्चित्रपक्षिभिः ।
प्रासादामण्डपाः सान्द्रकाननेषु क्वचित् क्वचित् ।१३५।
मध्ये मध्ये प्रदीप्यन्ते वेदिका विविधास्तथा ।
काञ्चनाश्चन्द्रकान्तैश्च मणिभिश्चित्रिताक्वचित् ।१३६।
चिन्तारत्नैः क्वचिच्चेन्द्रनीलरत्नैर्विचित्रिताः ।
पद्मरागैः प्रवालैश्च क्वचिद्वज्रैः स्फुरत्प्रभैः ।१३७।
वैडूर्यैर्भासमानैश्च स्यमन्तैः खचितः क्वचित् ।
क्वचिद्वंशच्छदैर्भातैर्माणिक्यैश्च मनोहरैः ।१३८।

उन सान्द्रवनों में कहीं-कहीं सुन्दर-सुन्दर राजप्रासाद सुशोभित हैं तो कहीं-कहीं मनोहारीमण्डप हैं एवं अनेक प्रकार के पक्षिगणों के सुन्दर शब्द करने से वनों के अन्त यानी प्रान्त भाग सन्नादिन अर्थात् सुशब्दायमान हैं जिससे अतिलुभावना वातावरण बना रहता है ।१३५।

उन वनों में बीच-बीच में विविध प्रकारके वेदिकाएं सुशोभित हो रही हैं जो चन्द्रकान्त मणियों से चित्रित श्रृंगारित हैं एवं कहीं पर सोना एवं मणियोंसे सुसज्ज अनेक वेदिका शोभित हैं ।१३६।

कहीं पर चिन्तामणि प्रदीप्त प्रासाद हैं तो कहींपर इन्द्रनीलमणियों से विविध प्रकारसे शोभित मण्डप हैं तो कहीं पर पद्मरागमणि से युक्त होने से एवं प्रवालों तथा हीरोंसे चमकिले प्रभाओंसे शोभित प्रसाद हैं ।१३७

कहीं पर प्रकाशित होते हुये वैडूर्यमणि एवं कहीं पर स्यमन्तक मणियों से प्रदीप्त तथा कहींपर माणिक्य एवं वंशच्छदों से युक्त होने से मनोहारी प्रासादादि हैं ।१३८।

हरिद्रत्नैश्चमुक्ताभिः प्रवालैश्चापि मण्डितः ।
अन्यैर्विचित्ररत्नैश्च मृदुलास्तरणैस्तथा ।१३९।
मुक्तादामवितानैश्चा दर्पणैश्चाप्यलङ्कृताः ।
मुक्तापुष्पलताजालकुञ्जानि मञ्जुलान्यलम् ।१४०।
भृङ्गपक्षिप्रघुष्टानि तद्वने सन्त्यनेकशः ।
वसन्तो हि क्वचित् तत्र नित्यमेव विराजते ।१४१।
निदाघश्च क्वचित् प्रावृट् क्वचिन्नित्यंशरत् तथा ।
हेमन्तश्च क्वचिन्नित्यं शिशिरो वर्त्तते क्वचिद् ।१४२।
षडेते ऋतवः स्वस्वभूत्या वै संवसन्ति हि ।
देशीदेवगिरिश्चौव वैराटीटोडिका तथा ।१४३।

उस दिव्यवन में हरेरंग के रत्नें मुक्ताओ प्रवालें आदि से मण्डित एवं अन्य नानाप्रकार के रत्नें से तथा अतिकोमल आस्तरण विछोने से सज्जित मण्डप हैं ।१३९।

उस वनमें मुक्ताओं की दामों में गूंथे वितानो एवं दर्पणों आदि से अलंकृत प्रासाद तथा मुक्ता के वने लताओं के अनेक सुन्दर-सुन्दर कुञ्जें से युक्त मण्डप हैं ।१४०।

उस वनमें अनेक प्रकार के भौरे एवं विविध प्रकारके पक्षियें के प्रघुष्ट यानी मनोहर शब्दोंसे सन्नादित अनेक मण्डप हैं । कहींपर उस वन में वसन्तऋतु सर्वदा विराजित रहता है जो वहाँ के निवासियें को सदा आनन्दित करता रहता है ।१४१।

वहाँ पर कहीं ग्रीष्मऋतु नित्य ही रहता है तो कहीं पर वर्षाऋतु है एवं कहींपर शरत्ऋतु सर्वदा रहती है तो कहींपर हेमन्त तथा शिशिर ऋतु नित्य ही सुशोभित रहते हैं ।१४२।

ऊपर वर्णित वसन्त ग्रीष्म, वर्षा, शरत् हेमन्त एवं शिशिर ऋतुमें अपने-अपने ऐश्वर्यों के साथ सदा वहाँ रहती हैं ।

ललिताचैव हिण्डोलीरागिण्यः षट्प्रकीर्तिताः ।
मूर्त्तिमतीभिरेताभिः स्वपत्नीभिर्मनोहरः ।१४४।
वसन्तोमूर्तिमान् रागोवसन्ते वर्त्तते सदा ।
भैरवीगुर्जरीचैव रेवागुणकरी तथा ।१४५।
वंगाक्षीबहुलीचैव रागिण्यः षट् सुविग्रहाः ।
एताभिः स्वसहाभिर्योयोषिद्भिर्भैरवोऽद्भुतः ।१४६।
रागः संवर्तते नित्यं निदाघे मूर्तिमान् स्वयम् ।
मल्लारी सोरठीचैव सावेरी कौशिकी तथा ।१४७।
गान्धारीहरिश्रृंगाराराागिण्यः षट्सुखप्रदाः ।
सुरूपाभिः स्वभार्याभिरेताभिर्मूर्तिमान् महान् ।१४८।
प्रावृषिप्रीतिकृन्नित्यं मेघरागः प्रतिष्ठितः ।
त्रिभासी चाथ भूपाली मालश्रीपटमञ्जरी ।१४९।

देशी देवगिरि वैराटी टोडिका ललिता एवं हिण्डोली ये छह रागिणी कहे गये हैं इन्ही साक्षात् मूर्तिधारिणी अपनी पत्नीरूपा रागिणीयों के साथ मनोहर वसन्तराग ऋतु भी मूर्तिमान् होकर वसन्तऋतु में सदा विराजता है ।१४३-१४४।

भैरवी गुर्जरी रेवा गुणकारी वंगाक्षी एवं बहुली ये ही सुन्दर विग्रह वाली छ रागिणियां हैं इन्ही छ स्व सहचारिणी स्त्री रूपा रागिणियों के साथ अतिअद्भुत मूर्तिमान भैरवनाम का राग स्वतः नियत रूप से निदाघ ऋतु में रहता है ।।१४५-१४६।।

मल्लारी सोरठी सावेरी कौशिकी गान्धारी एवं हरिश्रृंगारा ये ही सुख देनेवाली छ रागिणियां हैं इन्ही सुन्दर रूपवाली अपनी भार्याओं के साथ महान् मूर्तिमान् सदा प्रेम करने वाला मेघराज प्रावृषि यानी वर्षाऋतु में विराजमात रहता है ।१४७-।१४८।

विभासी, भूपाली, मालश्री पटमञ्जरी वडहंसी तथा कर्णाटी ये ही अतिअद्भुत विग्रहवाली छ रागिणियां हैं इन्ही रूपवाली

वडहंसी च कर्णाटी रागिण्योऽद्भूतविग्रहाः ।
स्वदारैः षड्भिरेताभिः पुत्रपौत्रस्नुषादिभि ।१५०।
रूपवान् पञ्चमोरागः सर्वदा शरदिस्थितः ।
कामोदी चापि कल्याणी ह्यभीरीनाटिका तथा ।१५१।
सालंगीनटहम्मीरीरागिण्यः सुरतिप्रदाः ।
दिव्यरूपाभिरेताभिः स्वस्त्रीभिर्दिव्यरूपवान् ।१५२।
हेमन्ते सर्वदारागोदीपकाख्यश्च तिष्ठति ।
मालवी त्रिवणी गौरी केदारी मधुमाधवी ।१५३।
पार्वतीया तथा चैव रागिण्यः श्रुतिसौख्यदाः ।
षट्भिर्मूर्तिमतीभिः स्वनायिकाभिश्च मूर्तिमान् ।१५४।
शिशिरे संस्थितोनित्यं श्रीरागः सकुटुम्बकः ।
रागाः षट्पुरुषाश्चेत्थं षट्त्रिंशच्चतथास्त्रियः ।१५५।

अपनी छ गृहिणीयों एवं पुत्र-पौत्र तथा वहेनों के साथ सुन्दर रूपवाला पंचमराग शरद् ऋतु में सर्वदा वहाँ रहता है ।१४९-१५०।

कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सालंगी एवं नटहम्मीरी ये ही सुरतिप्रद छ रागिणी हैं इन्हीं दिव्य रूपवाली अपनी पत्नियों के साथ रूपवाला दीपकनाम वाला राग हेमन्त ऋतु में सर्वदा स्थित रहता है ।१५१-१५२।

मालवी, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी एवं पार्वतीया ये ही सुनने वालों को परमसुख देंने वाली छ रागिणियां हैं इन्हीं छ अपनी नायिकाओं के साथ मूर्तिमान श्रीराग कुटुम्बियों के साथ शिशिर ऋतु में नित्यनिवास करता है ।१५३-१५४।-।

पूर्व वर्णित रूपसे छ पुरुषरूप से विख्यात राग हैं एवं पैतीस स्त्री रूप से प्रसिद्ध रागिणियां हैं ये सभी परिवारों के साथ सदा प्रमोदनाम के वन में निवास करते हैं । यह उस दिव्यधाम

रागिण्यः परिवारैश्च निवसन्ति सदावने ।
प्रमोदकाननं षष्ठमेतदावरणं महत् ।१५६।
तव भक्त्या प्रसन्नेन मया प्रोक्तं द्विजोत्तम ? ।
ततश्च सरितामादिकारणं सरयू सरित् ।१५७
श्रीमती शाश्वतीनित्यं सर्वलोकैकपावनी ।
सच्चिद्घनपरानन्दरूपिणी रामवल्लभा ।१५८।
विरजाद्याः परानद्यो यस्यांशाल्लोकविश्रुताः ।
यन्नामोच्चारणात् सद्योमुक्ताः संसारबन्धनात् ।१५९।
प्राप्नुयुर्दिव्यदेहं च ससीतं रघुनन्दनम् ।
तज्जलं निर्मलं कान्तं गंभीरावर्त्तशोभितम् ।१६०।

श्रीसाकेत का अति महत्त्वपूर्ण छठा आवरण है जो प्रमोदवन के नाम से लोक परलोक में विख्यात है एवं सर्वेश्वर श्रीसीतारामजी का नित्यविहार स्थल है । अब सर्व नदियों के कारणरूप श्रीसरयू का वर्णन सूनें ।१५५-।१५६।

श्रीवशिष्ठजी श्रीभरद्वाजजी से कहते हैं हे द्विजों में श्रेष्ठ भरद्वाजजी ? आपकी श्रीरामधाम विषयक विशेष भक्ति को देखकर प्रसन्नता से मैंने श्रीरामधाम के छठे आवरण तक का वर्णन किया इस छटे आवरण से पर सातवों आवरण के रूपमें अन्य सभी सरिताओं के आदि कारण श्रेष्ठ सरिता श्रीसरयूजी हैं ।१५७।

जो सरयू सर्वैश्वर्यशाली सर्वदा रहनेवाली एवं सम्पूर्णलोकों को सर्वदा पवित्र करने वाली प्रधान सरिता है तथा सत् चित् एवं आनन्द स्वरूपा और श्रीरामचन्द्रजी की अतिप्रिया है ।१५८।

विरजा गंगा यमुना प्रभृति श्रेष्ठ नदियां जिस सरयू के अंश से उत्पन्न होकर लोक में विश्वप्रसिद्ध हुई हैं । वही यह सरयू है जिसके नाम के उच्चारण मात्र से मानव संसार बन्धन से सद्यमुक्त हो जाते हैं ।१५९।

तथा दिव्यदेह प्राप्त कर. सर्वेश्वरी श्रीसीताजी के साथ

उत्तुङ्गविलसद्वीचिधवलीकृतदिङ्मुखम् ।
मन्दीकृतशरच्चन्द्रकरं चन्द्रमणिप्रभम् ॥१६१॥
तिरस्कृतसुधास्वादु कुन्दवृन्दहिमद्युति ।
प्रफुल्लैः पंकजैरक्तैः शुक्लैः पीतैस्तथाऽसितैः ॥१६२॥
अन्यैर्नानाविधैर्दिव्यैः सुगन्धीकृतमद्भुतम् ।
हंसैः क्रौञ्चैश्चकोरैश्च चक्रवाकैश्चसारसैः ॥१६३॥
सदारैरतिकूजद्भिश्चित्रैश्चान्यैः पतत्रिभिः ।
भ्रमद्भिर्भ्रमरैर्मत्तैर्गुञ्जद्भिर्मधुरस्वरैः ॥१६४॥

विराजमान श्रीरघुनन्दन जी को प्राप्त कर लेते हैं, उन सरयूजी का जल निर्मल चमकिला एवं गहरे आवर्त्त भ्रमरों से सुशोभित है ।१६०।

ऊंचे ऊंचे उछलती हुई वीचियों तरंगों से सुशोभित होती हुई सभी दिशाओं को स्वच्छ करने वाली एवं अलौकिक आभा से शरद् कालिन चन्द्रमा तथा चन्द्रकान्तमणि के प्रभा को भी मन्द कर देने वाली वह सरयू है ।१६१।

उस सरयूका जल सुधा-अमृत के स्वाद को भी तिरस्कार करने वाला है एवं कुन्द पुष्पों तथा हिम-बरफ के कान्ति को भी तुच्छ कर देने वाला है । तथा प्रफुल्लित लाल नील सफेद एवं पीले कमलों से अतिशोभायमान है ।१६२।

वह सरयू और भी अनेक प्रकारके अद्भुत एवं दिव्यपुष्पों से सुगन्धमय है । तथा हंस' क्रौंच' चकोर' चक्रवाक एवं सारसों से शोभित है ।१६३।

और भी अनेक प्रकारके अपनी दाराओं के साथ खूब कूजते मधुरशब्द करते हुये पक्षियों से तथा मधुरस्वरों से गुञ्जन करते

मत्ताभिर्भ्रमरीभिश्च समन्तोन्मुखरीकृतम् ।
मणिभिश्चन्द्रकान्तैश्च पद्मरागैश्च कौस्तुभैः ॥१६५॥
क्वचिद् वंशच्छदैर्वज्रैश्चेन्द्रनीलैः स्यमन्तकैः ।
चिन्तारत्नैश्च वैदूर्यैर्मुक्ताभिः स्फटिकैः क्वचित् ।१६६॥
माणिक्यैश्च क्वचिद्रत्नैर्नानावर्णैः सकाञ्चनैः ।
खचितानां सुतीर्थानां सहस्राणां तटद्वये ।१६७॥
प्रतिबिम्बैर्जलं स्वच्छं नानावर्णं प्रकाशते ।
वज्रस्फटिकमुक्तानां सूक्ष्मचूर्णानि वालुकाः ।१६८।

हुये मदोन्मत्त भ्रमरों के भ्रमण से वह अतिशोभित व आकर्षक है ।१६४।

वह सरयू सरिता मदों से मत्त भ्रमरियाँ से चारो ओर से मुखरीकृत है यानी गुञ्जायमान हो रही है । तथा चन्द्रकान्तमणि पद्मरागमणि एवं कौस्तुभ मणियों से शोभित है ।१६५।

वह सरिता कहींपर वंशच्छदों से तो कहींपर वज्रों तो कहीं पर इन्द्रनील मणियों से तो कहींपर स्यमन्तक मणियों से एवं चिन्तामणियों से तो कहींपर वैडूर्यों मुक्ताओं तथा स्फटिकों से देदिप्यमान है और अपनी शोभा से सभी को शोभित कर रही है ।१६६।

उस सरयू के दोनों तटों में कहीं-कहींपर माणिक्यों से खचित एवं सुवर्ण से युक्त नानावर्णों के रत्नों से सुशोभित सहस्रों दिव्यातिदिव्य तीर्थ शोभा पा रहे हैं ।१६७।

श्रीसरयूजीका जल स्वच्छ है पर रत्नों के प्रतिबिम्बों के पड़ जाने से नाना वर्णके रूपमें प्रकाशित होती है । तथा वज्र स्फटिक एवं मुक्ता के सूक्ष्म चूर्णों से युक्त बालुका वाली होने से अतिप्रकाशमान होती है ।१६८।

तथा चन्द्रमणीनां च द्योतयन्ति सरित्तटे ।
एवं श्रीसरयूराख्या परमानन्ददायिनी ।१६९।
सप्तमावरणं विद्धि साकेतस्य सरिद्वरा ।
सप्तावरणमध्येतु राजते रामवल्लभा ।१७०।
अयोध्या तत्परा बोध्या सान्द्रानन्दैकविग्रहा ।
इतीदं वर्णितं नित्यं सप्तावरणसंयुतम् ।१७१।
श्रीसाकेताभिधानं श्रीरामधामपरात्परम् ।
रामधाम्नः स्वरूपं च महात्म्यं मुनिसत्तम ॥१७२।
पठेद्वा श्रृणुयान्नित्यं य एतद्भक्तिसंयुतः ।
स गच्छेत् परमं धाम साकेतं योगिदुर्लभम् ।१७३।

तथैव उस सरिता–श्रीसरयू के तटों में चन्द्रकान्तमणियां प्रकाशित हो रहीं हैं । इस प्रकार सर्व लक्षण एवं शोभा से युक्त परमानन्द को प्र ान करने वाली श्रीसरयूजी हैं ।१६९।

हे भरद्वाजजी ? सरिताओं में श्रेष्ठ श्रीसरयूजी श्रीसाकेत के सातवें आवरण के रूपमें आप जान लें, यह श्रीरामजीकी प्रिया सरयूजी उस परमधाम श्रीअयोध्या के सप्तावरणो के बीच प्रकाशित होती है ।१७०।

हे भरद्वाजजी ? पूर्ववर्णनानुसार सत् चित् एवं आनन्द विग्रह–स्वरूप वाली अयोध्या नगरी इन पूर्वकथित सातों आवरणों से पर है ऐसा जानना चाहिये । मुनीश्वर ? आपके प्रश्नानुसार सात आवरणों से युक्त नित्य धाम श्री साकेत का मैंने यथार्थ रूप से वर्णन किया है ।१७१।

मुनीश्वर ? यही श्रीसाकेत नाम वाला सर्वेश्वर श्रीरामजी का परात्पर दिव्यधाम है । हे मुनिसत्तम ? इस दिव्यधाम श्रीरामजी की नगरी श्रीअयोध्या का स्वरूप एवं महात्म्य को ।१७२।

जो मानव भक्तिभाव से युक्त होकर नित्य पढे या श्रवण करे तो वह योगियों को दुर्लभ परम धाम श्री साकेत को जायगा ॥१७३॥

ज्ञानं योगश्चध्यानं च तपश्चात्मविनिग्रहः ।
नानायज्ञाश्चदानानि सर्वतीर्थावगाहनम् ।।१७४।
एतस्य पाठमात्रेण श्रवणेन च यत् फलम् ।
भवेत् तस्य भरद्वाज ! सहस्रांशं न चाप्नुयुः ।१७५।
तत्त्वामृतं पीतमनन्यचेतसा
सुधाधिकं त्वन्मुखनिर्गतं मया ।
धन्योऽस्म्यहं नाथ ! पदद्वयं प्रभो ?
नमामि नित्यं च तवास्मि किंकरः ।।१७६।।

इति श्रीमद्वशिष्ठ संहितायां श्रीमद्वशिष्ठ भरद्वाज सम्वादे-नित्य श्रीरामधाम स्वरूप वर्णनात्मकः षडविंशतितमोऽध्यायः ।।२६।।

हे भरद्वाजजी ! मानव इस श्रीरामधाम वर्णन के पाठ करने या श्रवण मात्र से जो फल प्राप्त कर पायेंगे उस फल का हजारवां भाग भी ज्ञान योग ध्यान तप की साधना आत्मनिग्रह या नाना-प्रकारके यज्ञ तथा सभी तीर्थों में स्नान करने से भी प्राप्त नहीं कर पायेंगे ।१७४-१७५।

श्रीभरद्वाजजी कहते हैं हे सर्व समर्थ गुरुदेव ? आपके मुख कमल से निर्गत सुधा से भी अधिक तृप्ति कारक परात्पर श्रीरामधाम वर्णन रूप अमृत तत्त्व को अनन्यचित्त होकर मैंने पी लिया अतः हे नाथ ? मैं धन्य हो गया हूं आपके दोनों चरणों में नित्य हो नमन-सादर दण्डवत प्रणाम करता हूं ।१७६।

आनन्दभाष्य सिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ॥ प्रकाश ॥ सम्पूर्ण

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

वशिष्ठसंतायां महर्षिश्रीवशिष्ठकृतः

꠰ परात्परोपाय श्रीरामस्तवः ꠰

महापुरुषसंज्ञस्त्वं क्षराक्षरेतरेश्वरः ।
सर्वलोकान्तराविश्य राम ! सर्वं हि रक्षसि ॥१॥
स एव रक्षकस्तथ्यो योऽन्तः प्रविश्य रक्षति ।
अन्तः प्रविश्य शास्ता यस्त्वं राम ! रक्षकोऽसि सः ॥२॥

प्रस्थानत्रयानन्द भाष्यकाराय नमोनमः

आनन्दभाष्य सिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ꠰ प्रकाश

सीताकान्तसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

एक समय में महर्षि श्री वशिष्ठजी सर्वेश्वर श्रीरामजी के साक्षात्कार हेतु पधारे श्रीरामचन्द्रजी से सत्कृत हो जाने के बाद आप सर्वेश श्रीरामजी की स्तुति कर रहे हैं—हे राम ? आप महा-पुरुषनाम वाले हैं क्षर प्रकृति वर्ग एवं अक्षर जीव समूहों से भी भिन्न ईश्वर दोनों के नियन्ता परमेश्वर-परात्पर परब्रह्म हैं, सर्वेश ? आप ही सभी लोकों के अन्तः में प्रविष्ट होकर-सर्वान्तर्यामी रूप से सभी वर्गों की रक्षा करते हैं ।१।

वही वास्तविक सर्वरक्षक तथ्य-तत्त्व है जो सभी के अन्त-रात्मा के रूप में प्रविष्ट होकर सभों की रक्षा करता है अतः हे

बहिर्व्याप्तेन रक्ष्यस्य रक्षणं न हि निश्चितम् ।
ममान्तश्चापिसंव्याप्त रामः ! मे रक्षको भव ॥३॥
रामः ! त्वद्दास्यविज्ञानात् त्वत्प्रीतिं त्वं प्रयच्छसि ।
स्वस्यप्रीत्या च हे रामः ! स्वाभिमुख्यं ददासि हि ॥४॥
हे राम ! तव वैमुख्ये न श्रेयः कश्चिदाप्नुयात् ।
राम ! तेऽभिमुखो लोकः सदाश्रेयः समाप्नुयात् ॥५॥
श्रुतावुक्तं 'यमेवैषवृणुते' इतिरूपतः ।
तव प्राप्तावुपायस्तत राम ! त्वं चासि नेतरः ॥६॥

श्रीराम ? जो सर्व जीवोंके अन्तः प्रविष्ट होकर सर्वतोभाव से अनुशासन करने वाला है वह रक्षक आप ही हैं ऐसे सर्वभूतमय आपको अनेकश नमन है ।२।

हे श्रीराम ? केवल बाहर की व्याप्ति से रक्ष्य शरणापन्न जीवों का रक्षण सर्वतोभाव से निश्चित नहीं रहता है, अतः मेरे अन्तः में भी संव्याप्त हे सर्वेश ? आप मेरे रक्षक हों ।३।

हे श्रीरामजी ? आपके दास्यभाव के स्वरूप को जानने पर यानी दास्य भावना से आपकी उपासना करने पर ही आप अपनी प्रीति स्वाभाविक स्नेह को साधकों को प्रदान करते हैं । एवं हे रामजी ? आप अपनी प्रीति-प्रशन्नता से ही साधकों को स्वाभिमुखता अपनी ओर आकर्षणता--अभिरुचिपना को प्रदान करते हैं जिससे साधक आपको प्राप्त कर सकता है ।४।

हे श्रीरामजी ? जैसे आपके विमुख रहने वाला कोई भी जीव कभी भी श्रेय नहीं प्राप्त कर पायेगा, वैसेही सर्वेश श्रीराम ? आपके अभिमुख यानी आपके शरणापन्न सभी लोक सदा श्रेय प्राप्त करेंगे ।५।

हे रामजी ? श्रुति में इस प्रकार का वर्णन हैं कि जिसको परब्रह्म-वरण स्वीकार कर लेता है उसीसे वह प्राप्त होता है इतर से

दुस्तरा राम ? ते माया सत्त्वादित्रिगुणाश्रयाः ।
त्वदुपाया जनाश्चैतां तव मायां तरन्ति हि ॥७॥
सर्वथा सफलस्त्वं हि करणे सर्ववस्तुनः ।
रक्षोपायस्ततस्त्वं मे हे राम ! सर्वदा भव ॥८॥
लोकानां त्राणकर्त्रा त्वं त्वया स्वीयामताश्च ये ।
त्वत्स्वामिकस्य मे राम ? तस्मात् त्राणकरोभव ॥९॥
उपायस्तव सम्प्राप्तौ त्वामेव वदति श्रुतिः ।
उपायो भवतात् त्वं मे राम ! वेदनिवेदित ? ॥१०॥

नहीं अतः आपकी प्राप्ति के लिये उपाय रूप आपही हैं अन्य कोई उपाय नहीं इसलिये आपकी प्राप्ति हेतु मेरे लिये भी आपही उपाय वनें ।६।

हे श्रीरामजी ? सत्व रज एवं तमोगुणों के आश्रय वाली आपकी माया अतिदुस्तरा हैं सामान्यतयातरी नहीं जा सकती, पर सर्वेश ? जिन लोकोंने आपको ही उस माया के तरने का उपाय के रूप में स्वीकार किया है यानी आपकी शरणागति स्वीकार किया हैं वे लोग इस त्रिगुणात्मिका माया को अनायाश ही तर जाते हैं ।७।

सर्वेश ? आप सभी पदार्थों या कार्यों को करने में सर्वतो भाव से समर्थ हैं अतः हे श्रीराम ! सर्वदा आपही मेरे रक्षा के संसार संतरण के उपाय हों ।८।

हे रघुनन्दनजी ? जिन लोगों को आपने अपना मान लिया है उन लोगों का संरक्षण कर्ता आपही हैं, अतः हे रामजी ! आपको ही एक मात्र स्वामी-संरक्षक मानने वाले मेरा संरक्षण करने वाले हों ।९।

हे वेदों से वेदित-जाने जाने वाले श्रीरामचन्द्रजी ! आपकी प्राप्ति के लिये उपाय आप ही हैं अन्य नहीं यानी श्रीराम संप्राप्ति के लिये प्रवचन, बुद्धि, बल, श्रवण या यागादिक अन्य साधन समर्थ

रक्षति भगवान् भक्तमित्येवं कथ्यते बुधैः ।
षडैश्वर्यविशिष्टस्त्वं त्वद्भक्तं राम ! रक्ष माम् ॥११॥
अगस्करोमतस्तस्मादनर्हस्ते सुसेवने ।
सुलभस्त्वं यतोराम ! देहि ते पुण्यसेवनम् ॥१२॥
सर्वशक्तिविहिनोऽहं राम ! त्वं सर्वशक्तिकः ।
शक्तिं प्रयच्छ मह्यं त्वत्प्राप्तिसम्पादिनीं पराम् ॥१३॥
अनुकूलः सदातेऽहं प्रतिकूलः कदापि न ।
त्वद्भिन्नोपायशून्यस्योपायस्त्वं राम ! मे भव ॥१४॥

नहीं सायुज्यमुक्ति के लिये मात्र श्रीरामप्रपत्ति ही उपाय है ऐसा श्रुति कहती है अतः श्रीरामजी ! आपकी प्राप्ति के लिये मेरे वास्ते भी उपाय आपही हों ।१०।

श्रीरामजी ! आपके शरण में आये हुये भक्त की आप रक्षा करते हैं ऐसा बुधजन कहते हैं अतः उत्पत्ति प्रलय भूत वर्गों की अगति तथा गति के नियामक एवं विद्या तथा अविद्यादि षडैश्वर्य सम्पन्न हे रामजी ! आपके शरण में आये आपका भक्त मेरी रक्षा कीजिये ।११।

श्रीरामचन्द्रजी ? मैं अग—पापकर्मक हूं अतः आपकी सेवा के लिए अयोग्य हूं तथापि शरणागतों के लिये आप सुलभ हैं अतः हे श्रीराम ! आप मुझे आपकी पुण्यमय सेवा का अवसर प्रदान करें ।१२।

हे रामजी ! मैं सभी प्रकारके शक्तियों से हीन हूं आप सर्वशक्ति सम्पन्न हैं अतः प्रभो ! आपकी प्राप्ति करा देने वाली आपकी पराशक्ति को मुझे प्रदान करें जिससे मैं आपको प्राप्त कर सकूं ।१३।

प्रभो ? मैं सदा आपका अनुकूल हूं प्रतिकूल आचरण करने वाला कभी न था न होऊंगा ही हे श्रीराम ! आपकी सायुज्य प्राप्ति के लिए आपसे भिन्न--अतिरिक्त उपायों से रहित मेरे लिए आप ही आपकी प्राप्ति का उपाय बनें ।१४।

कर्म ज्ञानं च भक्तिश्च मोक्षोपायतयामताः ।
सन्ति मे न ततो राम ! मोक्षोपायो हि मे भव ॥१५॥
भक्तरक्षासमर्था न कर्माधीनाः सुरादयः
अपराधीन ! हे राम ! मम रक्षाकरोभव ॥१६॥
न रक्षणे समर्था हि विनाश्याश्च बलादयः ।
अविनाशिन् ततोराम ! मम रक्षाकरोभव ॥१७॥
आनन्दं ब्रह्मणोविद्वान् नविभेति कुतश्चन ।
त्वदानन्दस्य विज्ञानं देहि रामाभयंकरम् ॥१८॥

निष्काम कर्म पराकाष्ठा प्राप्त ज्ञान एवं आपकी अनन्या भक्ति साम्राज्य मुक्ति के उपाय के रूप में माने गये हैं हे श्रीरामजी ! ये सव मेरे पास नहीं हैं अतः प्रभो ! मेरे मुक्ति का उपाय आप ही हो जायें ।१५।

कर्मों के अधीन रहने वाले सुर-देवतादि याना ब्रह्मा शंकर इन्द्र प्रभृति भक्तों की रक्षा में समर्थ नहीं हैं अतः अपराधीन यानी किसी भी प्रकारके कर्मों के अधीन नहीं होने वाले सर्वेश्वर हे श्रीरामजी ! आप मेरे रक्षा करने वाले हों ।१६।

बल शक्ति प्रभृति विनाशी ही हैं अतः जीव रक्षण में समर्थ नहीं हैं पर आप अविनाशी हैं अतः हे अविनाशी श्रीरामजी ! आप मेरी रक्षा कारक हों ॥१७॥

पर ब्रह्म श्रीरामजी के सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप को जानने वाला साधक जन्म मृत्यु सम्बन्धी किसी भी भय से नहीं डरता है यानी आपके स्वरूप को यथार्थ रूप से जानने वाला जीव जन्म मृत्यु रूप चक्र से सदा के लिये छूट जाता है अतः हे सर्वाभयप्रद श्रीरामजी ? आपके शरणापन्न जीवों को अभय कर देने वाला आपका आनन्द स्वरूप विज्ञान हमें भी प्रदान करें अर्थात् आप मुझे आपका वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करा दें जिससे मैं संसार चक्र से मुक्त होजाऊं ।१८।

सकृदेव प्रपन्नेभ्यो यच्छसि सर्वतोऽभयम् ।
प्रपन्नं त्वां च हे राम ! यच्छ मे ह्यकुतोऽभयम् ॥१९॥
दयालुः सर्वविच्चापि रक्षाप्रार्थनयैव हि ।
रक्षसि त्वां ततो राम ! रक्षार्थं प्रार्थयाम्यहम् ॥२०॥
परोपायस्य रामस्य श्रीवशिष्ठर्षिनिर्मितः ।
स्तवोऽयं भवतात् पाठात् भक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥२१॥

"सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम" इस आपकी अमोघ प्रतिज्ञा के अनुसार एक बार आपके शरणमें आकर हे रामजी ! मैं आपका हूं कहने वाले जीवों को आप सर्वतोभाव से यानी सर्वजीव या भीतिसे अभय प्रदान कर देते हैं अतः हे श्रीराम ! आपके शरणमें आये हुये मुझे भी सभी प्रकारके जन्म मृत्यु प्रभृति भयों से अभय कर दें।१९।

प्रभो ? आप परमदयालु हैं एवं सर्वविद् यानी जीवों के कर्माकर्म प्रभृति सभी स्वरूप को जानने वाले हैं और रक्षा के लिये प्रार्थना करने पर आप अवश्य ही उस जीव की रक्षा करते हैं अतः हे श्रीरामजी ! मैं मेरी रक्षा के लिए आपसे प्रार्थना कर रहा हूं ।२०।

महर्षि प्रवर श्रीवशिष्ठजी निर्मित यह श्रीरामजी का परमोपाय नामक स्तव पाठ करने वाले साधकों को भक्ति एवं मुक्ति को प्रदान करनेवाला हो ।२१।

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ॥ प्रकाश

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमोनमः

श्रीवशिष्ठसंहितायांमहर्षिश्रीविश्वामित्रकृतः

ॐ परमोपेय श्रीरामस्तवः ॐ

जगत्सृष्टयादिलीलात् त्वच्छ्रीरामाद् ब्रह्मणःखलु ।
उपेयोमुक्तजीवानां नेतरो कश्चिदस्ति हि ॥१॥
वेदवेद्यः परब्रह्म सर्वश्रुतिसमन्वितः ।
नित्यः सर्वेश्वरो राम ! मुक्तप्राप्यस्त्वमेव हि ॥२॥

श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत ॐ प्रकाश

सीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

अनन्य श्रीरामोपासक महर्षि श्रीविश्वामित्रजी सर्वेश्वर श्रीराम चन्द्रजी की स्तुति के व्याज से सर्वप्राप्य रूप श्रीरामतत्त्व का वर्णन करते हैं-जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार रूप लीलाकरने वाले परब्रह्म श्रीरामजी से अतिरिक्त मुक्त जीवों के लिये उपेय-प्राप्य यानी प्राप्त करने योग्य दूसरा कोई भी तत्त्व नहीं है ।१।

हे श्रीरामजी ! आप वेदों से वेद्य-जाने जाने वाले हैं एवं आप में ही सभी श्रुतियां भी समन्वित हो जाती हैं तथा परात्पर परब्रह्म भी आपही हैं और नित्य सभी अन्य देवादियों के ईश्वर एवं मुक्त जीवों से प्राप्य भी आप ही हैं अन्य कोई नहीं ।२।

नित्यानित्यविभूतीशो मुक्तोपेयश्चमुक्तिकृत् ।
उपादान निमित्तं च त्वं राम ! जगतोऽस्य हि ॥३॥
जगन्नाथ ! परोपेय ! मम यज्ञस्य रक्षक ! ।
भवतान्मुक्त्युपायो मे दीनबन्धो ! दयानिधे ! ॥४॥
कुर्मादिकावताराणामवतारी परेश्वरः ।
पूर्णकलोऽकलो रामो मुक्तो प्राप्तो भवेन्मम ॥५॥
आवृत्तिर्न च यत्प्राप्तौ तथ्योपायोमतो हि सः ।
उपेयश्च तथा भूतो राम ! त्वं भवतान्मम ॥६॥

हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप नित्यविभूति एवं अनित्य--लीला विभूतियों दोनो विभूतियों के ईश-संयमन कर्ता मालिक हैं तथा मुक्त जीवों के उपेय-प्राप्य और शरणापन्न जीवों को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं तथा इस जगत का आप ही अभिन्न उपादान एवं निमित्त कारण भी हैं ।३।

हे जगन्नाथ ! हे परम उपेयरूप श्रीराम ! मेरे यज्ञ के संरक्षक श्रीराम ! हे दयानिधि ! हे दयासिन्धु श्रीरामजी ? आप मेरे मुक्ति के उपाय हो जांय ।४।

हे श्रीरामजी ? 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' इस आगम प्रमाणानुसार आप मत्स्य, कूर्म, वराह वामन, नृसिंह, कृष्ण, परशुराम, प्रभृति सभी अवतारों के आपही अवतारी हैं-यानी नृसिंह वामनादि सभी आप के ही अवतार है अवतारी परमेश्वर केवल आपही हैं । सभी कलाओं से पूर्णहोतेहुये भी अकला के रूप में विदित होने वाले सर्वेश्वर श्रीराम मेरे सायुज्य मुक्ति के समय में मुझे प्राप्त हों ।५।

सर्वेश श्रीरामजी की प्राप्ति हो जाने पर जीवों की अनावृत्ति यानी पुनः संसार में आवागन नहीं होता है एवं श्रीराम-

आब्रह्मभूवनाल्लोकाज्जीवावृत्तिरिहास्ति यत् ।
लोकास्त्वल्लोकभिन्नास्तत् प्राप्या मे राम ? सन्तु न ॥७॥
त्वामुपेत्य तु सर्वेशं पुनर्जन्म न जन्मिनाम् ।
परोपेय ततो राम ? भवोपेयस्त्वमेव मे ॥८॥
अर्चिरादिपथाद् राम ? प्राप्तस्यावर्त्तनं न हि ।
अर्चिरादिपथाद् राम ? भूयाः प्राप्तस्त्वमेव मे ॥९॥
रामधामगतस्यात्र पुनरागमनं नहि ।
तद्वाचिकी श्रुतिश्चास्ति 'न स पुनरावर्त्तते' ॥१०॥

चन्द्रजी के प्राप्ति में उपाय भी श्रीरामजी ही हैं तथा उपेय प्राप्य भी श्रीरामजी ही हैं ऐसे उपायोपेय–प्राप्य एवं प्रापण के साधनभूत हे श्रीरामजी ! आप मेरेलिये भी उपायोपेय दोनों वनजायें ।६।

हे रामजी ? ब्रह्मलोक पर्यन्त गये हुये जीवों की पुनरावृत्ति शास्त्रों में वर्णित है अतः प्रभो ? आपका दिव्यधाम श्रीसाकेत से भिन्न उनलोकों की प्राप्ति मुझे न हो जिनसे मुझे वापस आना पडे पर दयाकर मुझे आपका धाम श्रीसाकेत की प्राप्ति करादें जिससे हमारा आवागमन सदा के लिये मिट जाय ।७।

हे श्रीरामजी ? परमोपेय सर्वेश्वर आपको प्राप्त करलेने के बाद जीवों का पुनर्जन्म नहीं होता है अतः प्रभो ! मेरे लिये भी आप ही उपेय हों ।८।

सर्वजीव प्राप्य हे श्रीरामचन्द्रजी ? अर्चिरादिमार्ग से आपको प्राप्त हुये जीवों का पुनः इहलोक में आवर्तन नहीं होता है–अतः हे श्रीरामजी ! आपही मुझे अर्चिरादि मार्ग से प्राप्त हों ताकि मेरा पुनः इसलोकमें जन्म न हो । अर्चिरादिमार्ग के

हे राम ! त्वामुपेतस्य पुनरागमनं न हि ।
क्षीणे पुण्येऽन्यलोकेभ्यः पुनरागमनं मतम् ॥११॥
भक्त्याऽथवा प्रपत्त्या च रामलोकं गतस्य हि ।
भवतान्न पुनर्जन्म क्षीणत्वात् सर्वकर्मणाम् ॥१२॥
त्वदानन्दमतिं प्राप्ता निर्भयास्त्वामुपेत्य हि ।
योगिध्येयपरब्रह्मन् देहि मे राम ! तां मतिम् ॥१३॥

विषय में ब्रह्मसूत्र--उपनिषद् तथा गीता के आनन्दभाष्य एवं अर्थचन्द्रिका टीका के व्याख्यान में विशेष चर्चा किया है अतः विशेषार्थी वहीं देखें ।९।

'न स पुनरावर्तते' यानी श्रीरामधाम दिव्यधाम श्रीसाकेत लोक प्राप्त जीव पुनः इस मर्त्यलोक में नहीं आता है इसप्रकार श्रुति प्रतिपादन करती है अतः श्रीरामधाम–साकेत को प्राप्त हुये श्रीरामशरणापन्न जीववर्गों का भूलोक में पुनरागन नहीं होता है ।१०।

'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' यानि पुण्य के क्षीण नाश हो जाने पर जीववर्ग पुनः मर्त्यलोक में प्रवेश करते हैं इस गीता के प्रमाणानुसार श्रीसाकेत लोकातिरिक्त अन्यलोकों से जीवों का पुनः मर्त्यलोक में आगन शास्त्र संमत है परन्तु हे शरणागतवत्सल ! श्रीरामजी ! 'निवर्तयेद् भयेनैनं श्रीरामः श्रितवत्सलः' इस शास्त्र वचनानुसार आप को प्राप्त जीववर्ग का पुनः इस लोक में आगमन नहीं होता है ।११।

भक्ति अथवा प्रपत्ति से दिव्यधाम श्रीराम लोक–साकेत गये जीव का पुनर्जन्म के कारणभूत सभी कर्मों के क्षीण हो जाने से पुनर्जन्म नहीं होता है ।१२।

साधक जीववर्ग आप की प्राप्ति का साधनभूत आनन्दस्वरूपा मति को प्राप्तकर उसके द्वारा आपको प्राप्तकरके सदाके

नित्यात्साकेतधाम्नश्च भक्तस्यावर्त्तनं न च ।
स्वयं नावर्तते भक्तोरामोनावर्त्तयेद्धि तम् ॥१४॥
परोपेयस्यरामस्य विश्वामित्रर्षिनिर्मितः ।
स्तवोऽयंभवतात् पाठा सर्वश्रेयः प्रदायकः ॥१५॥

लिये निर्भय हो जाते हैं योगियों से सर्वदा ध्यान करनेयोग्य परात्पर ब्रह्म हे श्रीरामजी ? मुझे भी उस मति को प्रदान करें ताकि मैं भी आपको प्राप्तकरसकूं ।१३।

श्रीरामचन्द्रजी के नित्यधाम श्रीसाकेत से भक्त का इसधाम भूलोक में आवर्त्तन नहीं होता है, क्योंकि भक्त स्वयं वापस नहीं आता है शरणागत वत्सल श्रीरामजी शरणागत जीव को वापस नहीं भेजते हैं अतः श्रीरामधाम प्राप्त जीव वहीं श्रीराम कैंकर्य करतेहुये सदानिवास करता है ।१४।

श्रीविश्वामित्र महर्षिनिर्मित यह श्रीरामजी का परमोपेय नामक स्तव पाठ करने वाले साधक का परम श्रेय प्रदाय कहो ।१५।

आनन्दभाष्यसिंहासनासीनश्रीरामानन्दाचार्य

रामेश्वरानन्दाचार्य

प्रणीत प्रकाश

श्रीरामः शरणं मम

सीताराम
भरत
लक्ष्मण
शत्रुघ्न